प्राचीन भारत में प्रेक्षागृह

डा० रेखा रस्तोगी



प्राचीन भारत में प्रेक्षागृह

डा० रेखा रस्तोगी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

श्रावण 1912 (अगस्त 1990)

मूल्य : 20 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली—110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल० एल० ए० आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

भारत मुद्रणालय, 1/11835 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

प्राचीन भारतीय समाज और उसकी उपलब्धियां विद्वानों, इतिहासकारों, पुरातत्वविदों और शोधकर्ताओं के लिए आश्चर्य और जिज्ञासा का विषय रही हैं। भारतीय मनीषा ने जीवन के हर क्षेत्र में संधान किया था और प्रकृति की शाश्वत चेतना को खोजने की कोशिश की थी। दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त साहित्य, कला और संगीत के क्षेत्र में भी प्राचीन भारत की उपलब्धियां उल्लेखनीय रही हैं। रंगमंच के क्षेत्र में, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र और कालिदास, भास तथा शूद्रक के संस्कृत नाटक उल्लेखनीय रहे हैं। इसी समृद्ध नाट्य परम्परा के विधा रूप रहे हैं प्राचीन भारत के प्रेक्षागृह।

प्रस्तुत पुस्तक में डा० रेखा रस्तोगी ने प्रवचन, अभिनय, धर्म-प्रसार, नृत्य आदि उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के प्रेक्षागृहों की स्थापत्य और निर्माण शैली की विस्तृत जानकारी दी है। लेखिका की यह शोधपूर्ण पुस्तक पाठकों को निश्चय ही विषय से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारी देगी।

प्रकाशन विभाग भारत की गौरवशाली संस्कृति से पाठकों को अवगत कराने के लिए समय-समय पर इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशन करता रहा है। ऐसे ही प्रयास की एक कड़ी प्रस्तुत पुस्तक है। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

डा० श्याम सिंह शशि

निदेशक

प्राक्कथन

हम भारतवासियों में प्राय: यह भ्रांति है कि वर्तमानकालीन विज्ञान के स्रोत यूरोपीय देशों से मिले हैं, अतएव हम विज्ञान के जन्म और विकास का श्रेय विदेशों को ही देते हैं। वास्तविकता यह है कि विकासोन्मुख विज्ञान सहस्रों वर्षों पूर्व भारत भूमि पर जन्मा तथा विकसा था। इसका प्रमाण प्राचीन साहित्य है। यह सर्वज्ञात है कि प्राचीन समय में भारत की भाषा संस्कृत थी, फलस्वरूप तत्कालीन महाकाव्य, काव्य, साहित्य तथा विज्ञान इसी भाषा में लिखे गए हैं। भवन वास्तु-स्थापत्य कला भी विज्ञान की ही एक विधा है। यह कला महाभारत, बौद्ध-जैन काल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी, ऐसा हमें प्राचीन स्थापत्याकोषों को देखकर सहज ही विश्वास हो जाता है। तब बड़े-बड़े मंदिरों और राजप्रासादों का निर्माण सुनियोजित रूप से होता था। इन भवनों के अंग-उपांगों में 'प्रेक्षागृह' का भी विशेष स्थान था। मनोरंजन, ज्ञान एवं धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयुक्त होने वाला यह स्थान किन्हीं विशिष्ट वास्तु-सिद्धांतों के आधार पर बनाया जाता था। इसके पुष्ट प्रमाण हमें प्राचीन साहित्य जैसे महाकाव्य, नाट्य शास्त्र, प्राचीन वास्तु शास्त्र, बौद्ध-जैन धर्म के ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। इनमें प्राचीन प्रेक्षागृहों के अस्तित्व एवं विभिन्न स्वरूपों के कई बिम्ब उभरते हैं। इन प्राचीन प्रेक्षागृहों के विकसित स्वरूपों को जानने के लिए मेरी स्वभावत: जिज्ञासा हुई, फलत: मैंने 'प्राचीन भारत में प्रेक्षागृह' शीर्षक से एक पुस्तक लिखने की इच्छा सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग के निदेशक महोदय से प्रकट की। उन्होंने पुस्तक की विषय-सामग्री का पर्यवेक्षण कर पुस्तक को प्रकाशित करने का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। इसके अंतर्गत ईसा के पहले तथा बाद के प्रेक्षागृहों के अस्तित्व, विभिन्न स्वरूपों एवं उनके वास्तुशिल्प चित्रण की दृष्टि से प्राचीन साहित्य का अध्ययन करके तथा स्थापत्य के वास्तुवशेषों को देखकर उन पर संक्षिप्त टिप्पणी की गई है। साथ ही आजकल के प्रेक्षागृहों एवं प्रेक्षागृहों के ही एक भिन्न स्वरूप—सिनेमागृह से, संक्षिप्त तुलना भी की गई है।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि प्राचीन भारत के रंगमंच को लेकर अनेक कार्य हुए हैं। अतएव यहां कुछ प्रसिद्ध विद्वज्जनों के कार्यों

का संक्षिप्त वर्णन अपेक्षित है। ऐसे कार्यों में मकंद का 'एंशियेंट थियेटर' दास गुप्त का 'इंडियन थियेटर', चन्द्रभानु गुप्त का 'एंशियेंट इंडियन थियेटर' राय गोविंद चन्द्र की 'भरत की नाट्य शालाओं के रूप', पं० सीताराम चतुर्वेदी का 'भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच', एम० एल० वराड पाण्डे की 'ट्रेडीशन आफ थियेटर', 'द हिस्ट्री आफ इंडियन थियेटर', प्रमोद कार्ले की 'द थियेट्रिक यूनिवर्स', डा० कपिला वात्स्यायन की 'द ट्रेडीशनल थियेटर', डा० डी० एन० शुक्ल का 'भारतीय स्थापत्य', डा० प्रसन्ना कुमार आचार्य का 'आर्किटेक्चर इन इंडिया एण्ड एब्राड' आदि प्रमुख पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त इस विषय पर कतिपय शोध पत्र भी प्राप्त होते हैं, जिनमें डा० वी० राघवन, डा० सुब्बाराव, डा० मनमोहन घोष, डा० कृष्ण चन्द्र वाजपेयी आदि के लेख महत्वपूर्ण हैं। मैंने इन महानुभावों के प्राचीन प्रेक्षागृह सम्बंधी विचारों से पुस्तक की विषय-सामग्री को परिपुष्ट किया है तथा प्राचीन प्रेक्षागृहों के विभिन्न स्वरूपों एवं निर्माण-शैली का वर्णन किया है।

इस संदर्भ में मैंने वैदिककालीन साहित्य, रामायण, महाभारत, पातंजल महाकाव्य अष्टाध्यायी, नाट्य-काव्य शास्त्र, बौद्ध-जैन धर्म के कुछ संदर्भ ग्रंथ, नाट्यकृतियां, कला-शिल्प तथा वास्तुग्रंथ और प्राचीन ग्रीक सिविलाइजेशन एवं इतिहास की संदर्भ पुस्तकों का अध्ययन किया है। इन ग्रंथों के अध्ययन के अतिरिक्त मैंने कुछ प्राचीन गुफा स्थित प्रेक्षागृहों, दक्षिण भारत के देव मंदिरों एवं राजभवनों से सम्बद्ध मंडपों तथा कुछ आधुनिक प्रेक्षागृहों एवं छविगृहों का सर्वेक्षण भी किया है।

मैंने विषय-सामग्री की सीमा कुछ अध्यायों के माध्यम से निश्चित की है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में प्राचीन प्रेक्षागृहों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में प्रेक्षागृहों के उद्भव, अस्तित्व एवं विकास को दृष्टि में रखते हुए प्राचीन साहित्य में उनके संदर्भ निकाले गए हैं।

इसी अध्याय में पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन में प्राप्त कुछ प्रेक्षागृहों के ध्वंसावशेषों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। दक्षिण भारत में प्राचीन मंदिरों एवं राजप्रासादों से सम्बद्ध कुछ रंगमंडपों पर प्रकाश डालते हुए उन्हें चित्रों के द्वारा दर्शाया गया है। उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रेक्षागृहों का भी उल्लेख किया गया है जो किन्हीं राजाओं द्वारा बनाए गए थे, किन्तु कालांतर में उन्हें किन्हीं धर्म सम्प्रदायों ने अपने सम्प्रदाय के धार्मिक स्थल के रूप में परिवर्तित कर दिया।

पुस्तक के तृतीय अध्याय में प्राचीन प्रेक्षागृहों के वास्तुशिल्प का चित्रण किया गया है। इसमें प्रेक्षागृहों के आकार-प्रकार एवं उनके विभिन्न अवयवों पर समुचित विवेचना की गई है। चतुर्थ अध्याय में प्राचीन प्रेक्षागृहों के आधार पर कुछ आधुनिक प्रेक्षागृहों के विषय में चर्चा की गई है जिनमें स्टेडियम, सभागार तथा छविगृह प्रमुख हैं। अंत में सम्पूर्ण पुस्तक का संक्षिप्त एवं व्यवस्थित सार 'निष्कर्ष' के रूप में प्रस्तुत है।

मैंने पुस्तक की सामग्री एकत्रित करने के लिए अनेक पुस्तकालयों की सहायता ली है, जिनमें राष्ट्रीय संग्रहालय, नेशनल आर्काइव्स, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, संगीत अकादमी, तुलसी सदन, भारतीय विद्या संस्थान साहिबाबाद आदि के पुस्तकालय प्रमुख हैं। मैं इन पुस्तकालयों के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति अत्यंत आभारी हूं, जिन्होंने मुझे विषय-सम्बंधी सामग्री उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की।

मैं भारत भवन (भोपाल) के प्रशासनिक अधिकारी के प्रति भी आभार प्रकट करती हूं, जिन्होंने भारत भवन में स्थित प्रेक्षागृहों की विस्तृत जानकारी एवं उनके चित्रों को भेज कर मेरे इस कार्य को सहज बनाया। दक्षिण भारत के कुछ प्रेक्षागृहों के चित्र एवं सामग्री प्राप्त कराने के लिए टूरिस्ट ब्यूरो के अधिकारियों की भी आभारी हूं। मैं प्रसिद्ध रंगमंच-शिल्पी, मनीषी, नेशनल स्कूल आफ ड्रामा के भूतपूर्व निदेशक, डा० गोवर्धन पांचाल की आभारी हूं, जिन्होंने दक्षिण के 'कूथाम्बलम्' रंगमंच की महत्वपूर्ण जानकारी एवं उसके चित्रों को उपलब्ध कराकर प्रस्तुत पुस्तक की महत्ता बढ़ाई है। इसके अतिरिक्त रंगमंच इतिहासकार एवं प्रसिद्ध लेखक श्री म० ल० वराडपाण्डे की अत्यंत कृतज्ञ हूं, जिन्होंने प्राचीन प्रेक्षागृह सम्बंधी कुछ नवीनतम जानकारी द्वारा इस पुस्तक की पांडुलिपि को प्रस्तुत रूप देने में महती योगदान दिया है। आधुनिक प्रेक्षागृहों के निर्माण-सम्बंधी कुछ मूलभूत सिद्धांतों की जानकारी देने के लिए मैं आधुनिक वास्तुविदों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूं, जिन्होंने प्राचीन प्रेक्षागृहों की जानकारी दी। इसी संदर्भ में मुझे इंजीनियर दिनेश कृष्ण से प्रेक्षागृह के बारे में जो तकनीकी जानकारी एवं छविगृह के रेखाचित्र बनाने की सहायता मिली, उनकी भी हृदय से आभारी हूं।

अंत में, मैं आशा करती हूं कि प्राचीन प्रेक्षागृह-विषयक इस पुस्तक से इतिहासकारों, रंगशिल्पकर्मियों, वास्तुविदों एवं पुरातत्व वेत्ताओं को आगे कुछ करने की नई दिशा मिलेगी तथा भारत की प्राचीन विज्ञान-सम्बंधी सम्पत्ति के जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान-पिपासा भी शांत होगी।

डा० रेखा रस्तोगी

विषय-सूची

अध्याय 1

प्रेक्षागृह और उसकी आवश्यकता

प्रेक्षागृह क्या है ? सामान्यतः यह एक ऐसा कक्ष है, जिसमें एक स्थान विशेष से कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया जा सके और इन कार्यक्रमों का श्रोता या दर्शक सुख-पूर्वक बैठकर आनंद ले सकें अर्थात् रंग-स्थल स्टेज एवं प्रेक्षक-स्थल के समन्वित स्वरूप को प्रेक्षागृह की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः इसका प्रत्यक्ष सम्बंध प्रेक्षकों से होता है। आजकल इस गृह (ओडिटोरियम) के अनेक स्वरूप विद्यमान हैं, जिन्हें सिनेमागृह, स्टूडियो, रंगशाला, स्टेडियम, मल्लशाला (अखाड़ा), नाट्यशाला, रंगमंडप, सभागृह आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

सभ्यता के प्रारम्भ में मनोविनोद हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित प्रेक्षागृह की आवश्यकता कब और क्यों हुई, इसके निश्चित एवं पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते। किन्तु यह निश्चित है कि प्रागैतिहासिक काल से मानव में मनोरंजन करके मन बहलाने की प्रवृत्ति थी। आदिम युग में वह पशु-पक्षियों के नाचने-गाने की अनुकृति से अकेले अपना मनोविनोद करता रहा। उसमें यह भावना व्यस्क हुई तो आकाश के नीचे सामूहिक रूप से किसी पहाड़ी या मैदान में एकत्रित होकर अपनी विभिन्न चेष्टाओं और मुद्राओं के द्वारा आनंद प्राप्त करने के उसने नए स्रोत ढूंढ़े। कुछ मनुष्यों के समूह ने कार्यक्रम प्रस्तुत किए और कुछ मनुष्यों ने उसे देखा-सुना। यहां उसे आंधी, वर्षा, धूप, सर्दी से प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करना पड़ा। इन सबसे अपनी सुरक्षा हेतु उन्हें गिरि कंदराओं की शरण लेनी पड़ी। क्रमशः सभ्यता का विकास हुआ, मैदानों में गांव और नगर बसे। गिरि कंदराएं इन बस्तियों से दूर थीं। यहां प्रत्येक नागरिक के लिए पहुंचना कष्टप्रद था। तब ऐसे भवन की आवश्यकता हुई जिसे बस्ती के मध्य ही निर्मित किया जा सके तथा जो प्राकृतिक प्रकोपों से सुरक्षा भी दे सके और जहां दर्शक सुविधापूर्वक सुव्यवस्थित आसनों पर बैठकर कार्यक्रमों का आनंद उठा सकें। इस प्रकार प्रारम्भिक प्रेक्षागृहों का आवश्यकतानुसार निर्माण हुआ। वस्तुतः अति प्राचीन प्रेक्षागृहों के प्रारम्भिक स्वरूप को भवन तक सीमित न करके उन्हें प्रेक्षा

स्थल कहना ही उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि ये प्रेक्षास्थल देश, काल और परिस्थितियों वश कभी खुले मैदानों में, कभी गिरि कंदराओं और कभी नगर या गांव के मंदिर या राजभवनों के पार्श्व में परिवर्तित और परिवर्द्धित होते रहे। कभी ये अस्थायी थे, तो कभी स्थायी। विण्डिश तथा कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि प्राचीनकालीन भारत में प्रेक्षागृह स्थायी नहीं थे। वे विशेष अवसरों पर निर्मित कर लिए जाते थे। कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के पश्चात रंगदेवता का विसर्जन करके उन्हें उजाड़ दिया जाता था। अस्थायी प्रेक्षागृहों का निर्माण विजयोत्सव, विजय यात्रा आदि के समय मनोरंजन के कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता था। आजकल अस्थायी प्रेक्षागृहों की श्रेणी में रास, रामलीला, स्वांग, यात्रा, भवाई, नृत्य, सरकस आदि के नाट्य-प्रयोग हेतु बनाए गए रंगमंडप आते हैं। प्राचीनकालीन प्रेक्षागृहों का इतिहास यद्यपि पौराणिकता की धुंध में समाया हुआ है किन्तु उत्खनन में प्राप्त प्राचीन प्रेक्षागृहों के ध्वंस अवशेषों, प्राचीन मंदिरों एवं राजगृहों से सम्बद्ध नाट्यमंडपों और प्राचीन साहित्य के सूत्रों के आधार पर निश्चित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारत में सम्पन्न, समृद्ध और सुनियोजित प्रेक्षागृहों का अस्तित्व था।

मनोरंजन के क्षेत्र में प्रेक्षागृह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस स्थल की आवश्यकता एवं व्यवस्था वेदों से पूर्व ही आरम्भ हो गई थी। शनैः-शनैः कालक्रम से, तत्कालीन प्रेक्षागृह-निर्माण विशेषज्ञ वास्तुकला की दृष्टि से उस समय की प्रेक्षागृह सम्बंधी उपयोगिताओं और आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए इन भवनों के प्रारूपों में परिवर्तन करते रहे, जिससे प्रेक्षागृह के अनेक स्वरूप विकसित हुए।

प्राचीन प्रेक्षागृहों का उद्भव कहां से हुआ, यह एक विचारणीय प्रश्न है। सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति के मूल ग्रंथ, वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में सामाजिकों के मनोरंजन के लिए एवं धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ अभिनय का आयोजन होता था। यह अभिनय यज्ञ के पश्चात् अथवा यज्ञ अवधि के मध्य होता था। कुछ विद्वानों का मत है कि ये यज्ञस्थल ही कालांतर में प्रेक्षागृह बन गए। उनके इस मत का आधार है कि जिस प्रकार प्राचीन मिस्र में नाटकगृहों का उद्भव ओसेसिस देवता की पूजा से हुआ और वहां समाज की कल्याण भावना को उजागर करने के लिए नृत्य-संगीत आदि के आयोजन ओसेसिस देवता की मूर्ति के समक्ष होते थे, उसी प्रकार भारत में रंगशालाओं का उद्भव भी मंदिरों से हुआ। ये मंदिर ही प्राचीन यज्ञ-स्थली के विकसित रूप हैं। इनसे सम्बद्ध भवन ऐसे स्थल या मंडप थे, जहां सर्वसामान्य सामूहिक रूप से कार्यक्रमों का आनंद लेते थे।

अध्याय 2

प्रेक्षागृहों का इतिहास

प्राचीन प्रेक्षागृहों की ऐतिहासिक परम्पराओं तथा क्रमिक विकास को जानने के लिए मुख्यतः तीन आधार रखे गए हैं। प्रथम आधार प्राचीन साहित्य, कला एवं शिल्प-वास्तु ग्रंथ तथा प्राचीन नाटक हैं। द्वितीय आधार उत्खनन में प्राप्त प्रेक्षागृहों के अवशेष हैं तथा तृतीय आधार दक्षिण भारत के प्राचीन देवमंदिर तथा राजभवन से सम्बद्ध प्रेक्षागृहों का वर्णन है।

(क) प्राचीन साहित्य में प्रेक्षागृह के संदर्भ

प्राचीन वाङ्मय में प्रेक्षागृह शब्द के अनेक पर्याय मिलते हैं, जो प्रेक्षागृह के स्थूल स्थलवादी दृष्टिकोण के बोधक हैं। 'समन', 'सभा', 'समाज', 'सभा-मंडप', 'मंचवाह', 'रंगवाह', 'प्रेक्षागार', 'रंगसंश्रय', 'रंगमंडप' 'आनर्त', 'उपस्थानशाला' आदि पदों का प्रयोग प्रेक्षागृह के संदर्भ में हुआ है।

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह कभी मुक्ताकाशी थे तो कभी भवन के अंदर बनते थे। इनमें-से कुछ सार्वजनिक प्रयोग के लिए होते थे, तो कुछ निजी थे। कुछ बहुत विशाल थे, तो कुछ छोटे। वस्तुतः प्रेक्षागृहों का समृद्ध एवं सम्पन्न स्वरूप नाट्य-विद्या के विकास के बाद हुआ। नाट्य-प्रयोग में विभिन्न दृश्यों की योजना के लिए बहुखंडीय, बहुतलीय प्रेक्षागृहों की आवश्यकता हुई।

वेदों के समय अभिनय किसी खुले स्थान पर होते थे। ये आयोजन यज्ञवेदिका के सम्मुख होते थे। यद्यपि ऋग्वेद में पुरुरवा-उर्वशी संवाद, यमयमी संवाद, सरमापाणि संवाद तथा यजुर्वेद में नाट्य के कुछ पारिभाषिक शब्दों जैसे सूत, शैलूष, चित्रकारिणी आदि के प्रयोग से लगता है कि नाट्यमंडप की कल्पना भी उस समय लोगों के मस्तिष्क में रही होगी। किन्तु नाट्यगृह के संदर्भों के अभाव में ये निष्प्राण से लगते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी कुछ स्थलों पर रंगशालाओं के अस्तित्व की ओर संकेत है। अयोध्याकाण्ड में राजप्रासाद से सम्बद्ध सभा मंडप

में कुछ रंगारंग कार्यक्रम के उल्लेख मिलते हैं। एक स्थल पर राम-लक्ष्मण के वन-गमन से व्यथित भरत के मनोविनोद हेतु उनकी मित्र मंडली द्वारा एक सभा में नाटक, नृत्य आदि के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

महाभारत काल में वास्तुशिल्प कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। महाभारत के कुछ पर्वों में विशाल और समृद्ध प्रेक्षागार के अस्तित्व का बोध होता है। हरिवंश पर्व में कंस की वृहद रंगशाला का वर्णन है। इसमें अनेक स्तम्भों, दर्शकों के लिए आसनों और मंचों की व्यवस्था पाई जाती है। इस रंगशाला का उल्लेख करते हुए प्रभुदयाल मित्तल ने अपनी पुस्तक (बृजकलाओं का इतिहास पृ० 49) में लिखा है कि "मथुरा का एक स्थल, परम्परा से रंगभूमि के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अनुश्रुति के अनुसार वहां कंस की रंगशाला थी। कालांतर में उस स्थल पर शिव की मूर्ति स्थापित की गई, जो रंगेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है।" इस वृहद रंगशाला में आठ कोण वाले चरण (सम्भवत: स्तम्भ) हैं तथा यह अर्गला द्वारा वेदी, गवाक्ष एवं उत्तम गद्दों से युक्त है। विभिन्न जातियों एवं वर्गों के व्यक्तियों के लिए इसमें पताकाओं से सजे सुंदर आसन हैं। अंत:पुर की स्त्रियों एवं गणिकाओं के लिए पृथक-पृथक रूप से रत्न जटित सोने के आसनों से युक्त प्रेक्षागार हैं, जिनमें लटकते बारीक पर्दे पंख युक्त पर्वत के समान प्रतीत होते हैं। इस प्रेक्षागार में सामाजिकों के लिए काष्ठ एवं पत्थर के आसन हैं। प्रेक्षागार में स्वर्ण-निर्मित पलंगों का संकेत है, जिससे अनुमान किया जाता है कि इसमें विश्राम कक्ष की भी व्यवस्था रही होगी। इस विशाल कक्ष में जलपान कक्ष की व्यवस्था भी दिखलाई गई है, जो आज के स्टेडियम या अन्य प्रेक्षागृहों के जलपान कक्ष या कैंटीन से मिलते-जुलते हैं। इसी पर्व में एक अन्य स्थल पर ब्रह्मा की सभा का वर्णन है, जो स्वर्ण-स्तम्भों, तोरणों आदि से युक्त है। इसे द्रविड़ जाति के श्रेष्ठ वास्तुकार मय ने बनाया था। महाभारत ग्रंथ के विराट पर्व में राजा विराट द्वारा निर्मित समृद्ध रंगशाला का संकेत मिलता है। आदि पर्व में स्वयंवर मंडप का वर्णन है, जो प्राचीन प्रेक्षागृह का ही एक स्वरूप है। यह सुंदर द्वारों, तोरणों और स्वर्ण की जालियों से युक्त हैं। इसमें अतिथियों के लिए रत्न जटित आसन हैं। एक स्थान पर स्वयंवर के लिए एक सुसज्जित मंच बना है। इसकी भित्तियां एवं फर्श मणियों से विभूषित हैं। सोपानाकृति आसनों और विचित्र वितान वाला यह मंडप अद्भुत है। इसके अतिरिक्त सभा पर्व में एक विशाल विमानाकार सभा-भूमि का उल्लेख है। विमानाकार सभा मंडप प्राचीन द्रविड़ वास्तुशैली में निर्मित होते

थे । इस प्रकार के आकार का प्रमाण दक्षिण भारत के मंदिरों से सम्बद्ध प्रेक्षागृहों में मिलता है । कांचीपुर का मंदिर इस परम्परा का उपलब्ध ज्वलंत उदाहरण है।

इस सभा-भूमि को द्रविड़ जाति के श्रेष्ठ वास्तुकार मयदानव ने बनाया था । प्राचीन काल में सभा उस स्थान को कहा जाता था, जहां मनोविनोद अथवा धर्म प्रचार-प्रसार के लिए नाटक, उपदेश, प्रवचन आदि को जनसमूह के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। तारापद भट्टाचार्य महाभारत में वर्णित इस सभा को स्थायी प्रेक्षागृह मानते हैं। उनके मत के अनुसार 'सभा', 'रंग', 'प्रेक्षागृह' एक-दूसरे के पर्याय हैं । उस समय राजा अपने निजी व्यय से ऐसे प्रेक्षागृहों का निर्माण कराते थे, जिनमें स्वर्ण के मंचों, द्वारों एवं तोरणों की व्यवस्था की जाती थी । ये सभा भवन प्रायः मुख्य भवनों से सम्बद्ध होते थे ।

प्रायः कहा जाता है कि विशाल प्रेक्षागार का निर्माण प्राचीन ग्रीस एवं रोम में होता था, परंतु ऐसे प्रेक्षागारों के स्वरूप भारत के प्राचीन ग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। निःसंदेह उनका निर्माण भी हुआ होगा, जो कालांतर में भूकम्प जैसे किन्हीं प्राकृतिक प्रकोपों का शिकार हो गए होंगे ।

पातंजलि के महाभाष्य, कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र आदि ग्रंथों में प्रेक्षागृह के अनेक संकेत मिलते हैं। उस समय के प्रेक्षागृह अभिनय, नृत्य, संगीत के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों के लिए भी प्रयोग में आते थे। डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री का मत है कि पातंजलि कालीन भारत में रंगशालाएं सार्वजनिक सभा के लिए या प्रवचन हेतु प्रयोग की जाती थीं । उस समय नाट्यशाला में भित्तियों तथा रंगमंच के पर्दों पर आलेखन की प्रथा थी । प्रेक्षागृहों में चित्रकारी की जाती थी और इनमें यवनिका का प्रयोग होता था। (डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री पातंजलि कालीन भारत पृ० 502) । इसी प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय की रंगशाला ने सामाजिक महत्व के साथ राजनीति में भी प्रमुख स्थान ले लिया था, जैसा कि उस समय किसी पराजित राजा का वध नाट्यशाला में दिखाया गया है । इसी प्रकार हरिवंश पर्व में भी कुवलया पीड़ हाथी का वध विशाल प्रेक्षागृह में दिखाया गया है। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में प्रेक्षागृह का स्थान नगर से बाहर निर्दिष्ट किया है क्योंकि नगर में इन शालाओं के होने से नागरिकों के कार्यों में विघ्न पड़ता है। 'कामसूत्र' में सरस्वती मंदिर के निकट 'समाज' का उल्लेख मिलता है। समाज

स्थान विशेष की ओर संकेत करता है। इसी के साथ 'प्रेक्षण' शब्द भी मिलता है, जिससे यह सिद्ध है कि प्रेक्षागृह जैसा कोई स्थान मंदिर के पास होता था। उसमें किसी धार्मिक पर्व पर मनोरंजन के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। इस 'समाज' की परम्परा मौर्य शासनकाल से भी पूर्व की है जैसा कि अशोक के शिलालेखों में 'समाज' के उल्लेखों से ज्ञात होता है। चाणक्य ने भी एक स्थल पर 'उत्सव', 'समाज' तथा 'यात्रा' का संकेत दिया है, जिसमें निरंतर चार दिनों तक अबाध गति से जन-समूह मद्यपान करके मनोरंजन करता था। महाभारत में 'समाज' को एक 'शैवोत्सव' कहा गया है, जो संगीत एवं नृत्य के साथ होता है। द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर यह 'समाज' सोलह दिन तक चलता रहा। धर्म-निरपेक्ष लौकिक 'समाज' प्रायः रंगशाला अथवा प्रेक्षागारों में आयोजित किए जाते थे, जहां विभिन्न वर्गों के सामाजिकों के लिए मंच या चबूतरे बने होते थे। विशिष्ट वर्गीय सामाजिकों के लिए शिबिकाओं का प्रबंध होता था। इन 'समाजों' में प्रदर्शन, स्वयंवर, नृत्य, संगीत आदि का आयोजन किया जाता था। यहां तक कि प्रत्येक वर्ष पशुयुद्ध के प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन के लिए भी विशेष आयोजन इन्हीं 'समाजों' में होता था। बौद्ध एवं जैन धर्म में समाज के अंदर विभिन्न आयोजन किए जाते थे। उदयगिरी की पहाड़ियों में प्रा त दुमंजिले प्रेक्षागृह जैन कालीन 'समाज' हैं जहां पर धार्मिक-प्रचार हेतु धार्मिक प्रवचन होता था।

बौद्ध एवं जैन धर्म के ग्रंथों में 'रंगमंडल', 'रंगमाज्ज', नाट्यमंडल' आदि शब्दों से प्रेक्षागृह के अस्तित्व का बोध होता है। जातक कालीन रंगमंडल के मध्य में ऊंचा आसन होता था, जिस पर राजा एवं उसके कर्मचारी बैठते थे। नगर में उत्सव मनाकर मनोरंजन किया जाता था। घट्ट जातक तथा महापानद जातकों में 'युद्ध मंडल' का वर्णन है, जहां युद्ध तथा मल्ल युद्ध का प्रदर्शन दर्शकों के सम्मुख किया जाता था। आयोदर जातक में रंगमंडप के मध्य रंगमंडल (स्टेज) दर्शाया गया है। इसमें एक ओर राजा तथा दूसरी ओर साधारण जनता के लिए आसन व्यवस्था होती थी। आसनों की पंक्ति आगे से आरम्भ होकर पीछे की ओर ऊंची होती जाती थी। ये आसन काष्ठ निर्मित होते थे। जातक कालीन युग में कुछ रंगमंडप ऐसे भी थे, जो केवल राजभवनों से जुड़े थे। उन रंगमंडपों पर राज-कन्याओं के नृत्य एवं कंदुक क्रीड़ा का आयोजन होता था। बौद्ध धर्म के अन्य ग्रंथ 'अवदानशतक' में रंगमंच दो धरातलों में विभाजित दिखाया गया है। 'विनय-पिट्टक' में यद्यपि प्रेक्षागृह का विवरण पृथक रूप से नहीं मिलता है तथापि इसमें प्रयुक्त शब्द 'उपस्थान शाला' विचार गोष्ठी, प्रवचन आदि के लिए निर्धारित

स्थल है जो प्रेक्षागृह से समानता रखता है। सौंदरनंद में 'आनर्त' शब्द नाट्यशाला के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जैन धर्मग्रंथों में समृद्ध एवं व्यवस्थित प्रेक्षागृहों के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। जैन-धर्म के विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में जैन तीर्थंकरों के धर्मोपदेश एवं प्रवचन के लिए सभाभवन-रचना का विधान दिया गया है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति और जिनसेन कृत आदि पुराण (पर्व 23) में सभा-विन्यास का वर्णन है। ये विशाल भवन हैं, जिन्हें स्तम्भों, छतों से युक्त विनियोजित ढंग से निर्मित किया गया है। ये राजभवनों से सम्बद्ध हैं। स्वतंत्र भवन के रूप में भी इनका वर्णन किया गया है। तब सुनियोजित नगर में गोपुरों के वाह्य भाग में मकरतोरण और अभ्यंतर भाग में रत्नतोरण की रचना होती थी। वाह्यन्तरण तोरणों के दोनों पार्श्वों में एक-एक नाट्यशाला के निर्माण का विधान जैन साहित्य में निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी विशाल नाट्यशालाओं के संकेत भी मिलते हैं, जिनमें अनेक रंग-मंच (स्टेज) थे और प्रेक्षकों के आसनार्थ चौकियां थीं। धूमिशाल नामक कोष्ठ में पांच-पांच चैत्य प्रासादों का निर्माण कराने का वर्णन मिलता है, जहां इनकी वीथियों के दोनों ओर दो-दो नाट्यशालाओं को प्रस्थापित किया गया है। नाट्य-शालाओं के निर्माण के लिए निर्दिष्ट है कि इनकी ऊंचाई सामान्य शरीर के कद से बारह गुनी ऊंची होनी चाहिए। एक-एक नाट्यशाला में 32 रंगभूमियां होनी चाहिए। ये रंगभूमियां भी आकार-प्रकार में इतनी बड़ी और सुव्यवस्थित हों जिससे प्रत्येक रंगभूमि पर 32 नर्तकियां एक साथ प्रदर्शन कर सकें (भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, वाचस्पति गैरोला)। राजप्रेसनीय सूक्त में नाट्य मंडप का वर्णन मिलता है, जिसमें अनेक सुसज्जित स्तम्भ हैं, अर्द्धचन्द्रकार तोरण है। इसमें शालमंजिकाएं लगी हुई हैं, इसकी भित्ति रचना और चित्रकर्म सुंदर है। उसमें मंच और प्रेक्षकों के आसन निर्मित हैं। जैन धर्म से सम्बंधित प्राचीन स्थापत्य के अवशेषों को देखने से पता चलता है कि रंगमंडप दुमंजिले और कई स्तम्भों वाले होते थे। कुम्भारिया के नेमिनाथ मंदिर (1904) से सम्बद्ध रंगमंडप दुमंजिला है। राजस्थान में माउंट आबू के दिलवाड़ा जैन मंदिर का रंगमंडप वृत्ताकार है। इसमें चौबीस स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ के अग्रभाग पर तिर्यक शिलापट है, जिस पर रंगमंडप की छत आधारित है। इसका मूर्त्तिशिल्प उत्कृष्ट कोटि का है तथा इसमें लगे संगमरमरी पत्थरों पर पुष्प, पत्ती, कमल तथा विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

बौद्ध और जैन धर्म के साहित्य से ज्ञात हो जाता है कि तत्कालीन समाज में वृत्ताकार प्रेक्षागृह का बहुत प्रचलन था। ये प्रेक्षागृह मुक्ताकाशी और आच्छादित दोनों प्रकार के थे। ये अस्थायी और स्थायी दोनों ही प्रकार के थे। दोनों प्रकार के प्रेक्षागारों की रचना किन्हीं विशिष्ट सिद्धांतों के आधार पर ही होती थी।

कतिपय पुराणों जैसे ब्रह्मवैवर्त, हरिवंश, भागवद् तथा विष्णुधर्मोत्तर में भी प्रेक्षागृह के विभिन्न स्वरूपों और परम्पराओं का संकेत मिलता है। ब्रह्मवैवर्त-पुराण में जिस वर्तुलाकार रासमंडल का उल्लेख मिलता है, वह चंदन, कस्तूरी, कुंकुम आदि से सुगंधित है। रासमंडल को उद्यानों एवं सरोवरों से युवत दिखाया गया है। यह रासमंडल रत्नों से निर्मित और चन्द्रसदृश है। यहां यह परिलक्षित है कि रासमंडल नगर से बाहर उद्यान के मध्य निर्मित होता था। सम्भवतः यह मुक्ताकाशी रहा होगा। कृष्ण की नगरी वृन्दावन में प्राचीन आच्छादित रासमंडल के स्वरूप देखे जा सकते हैं। वे रासमंडल मंदिर के परिसर या पहाड़ियों पर भवन के अंदर निर्मित हैं। ये भवन गोल अष्टकोण वाली छतों से युक्त हैं। इनके मध्य में डेढ़ फुट ऊंचा गोल चबूतरा है, जिस पर रास होता था। इस प्रकार के रासमंडल के भवन वृन्दावन, मथुरा के बंशीधर, विधिवन, कारहला पहाड़ियों पर हैं। भागवत पुराण में मल्लक्रीड़ा महोत्सव के लिए ऐसी रंगभूमि की व्यवस्था की गई है, जहां रंगमंच के दृश्यों को देखने के लिए सभी वर्गों के दर्शकों की आसन व्यवस्था थी। राजा रंगमंडप के मध्य में श्रेष्ठ राज सिंहासन पर बैठता था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नाट्य प्रयोग के संदर्भ में दो प्रकार के प्रेक्षागृहों के विषय में बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण के लिखे जाने के समय आयताकार तथा वर्गाकार प्रेक्षागृहों का प्रचलन ही अधिक रहा होगा, क्योंकि ऊपर संकेतित अन्य पुराणों में केवल वृत्ताकार प्रेक्षास्थलों का ही विवरण मिलता है।

(ख) कला एवं वास्तुशिल्प के कतिपय ग्रंथों में प्रेक्षागृहों का उल्लेख

भारतीय नाट्यकला के वाङ्मय में भरतप्रणीत नाट्यशास्त्र का प्रमुख स्थान है। इसकी रचना सम्भवतः 300 वर्ष ईसा पूर्व हो चुकी थी और यह निश्चित रूप से तब लोक विश्रुत हो चुका था। नाट्य सम्बंधी ज्ञान का सैद्धांतिक एवं परिपूर्ण परिचय देने वाला इसके समान प्राचीन अन्य कोई ग्रंथ नहीं है। पाश्चात्य देशों में इस कोटि के ग्रंथों में कोई ऐसा ग्रंथ नहीं है, जो इस अत्युत्तम ग्रंथ की

समानता कर सके। एरिस्टोटल की 'पोएटिक्स' नामक रचना जरूर है लेकिन वह आकार में छोटी और अपूर्ण है। इसकी तुलना में नाट्यशास्त्र दस गुनी विस्तृत सामग्री से युक्त है। भरत के नाट्यशास्त्र में भाव, रस, अभिनय, प्रेक्षागृह का निर्माण-विधान, नाट्य-प्रयोग एवं अनेक नाट्य-सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। भरत ने नाट्यशास्त्र के प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में प्रेक्षागृह के निर्माण के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से वास्तुकला के नियमों का प्रतिपादन किया है। इन नियमों से यह पूर्णतः ज्ञात हो जाता है कि भरत के समय में प्रेक्षागृहों का स्वरूप बहुत ही समृद्ध, सम्पन्न एवं सुनियोजित था। उस समय नाट्य-प्रयोग का समुचित विकास हो चुका था। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि सामान्य मनोरंजन के कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए एक विशाल कक्ष भी पर्याप्त हो सकता है परंतु नाटकों के विभिन्न दृश्यों को दर्शाने के लिए एक ऐसे रंगमंच (स्टेज) की आवश्यकता होती है, जो बहुकक्षीय, बहुखंडीय, बहुतलीय हो; जिसमें से उच्चरित स्वर श्रोताओं को स्पष्ट रूप से सुनाई दे सकें, जिसमें ध्वनि की गूंज न हो, जो इतना बड़ा न हो जहां से पात्रों की मुद्राओं और भंगिमाओं को दर्शक ठीक और स्पष्ट रूप से न देख सकें, जहां पर प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था इतनी सुनियोजित हो कि आगे की पंक्ति में बैठे प्रेक्षक पीछे के प्रेक्षकों के लिए बाधक न हों। भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह-निर्माण के वे मूल वास्तुनियम प्राप्त होते हैं, जो आज भी वास्तुविदों के द्वारा प्रेक्षागृह-निर्माण में प्रयोग किए जाते हैं।

भरत और उनके समवर्ती युग में स्थायी प्रेक्षाभवनों का निर्माण होता था, जिनमें लकड़ी, ईंट, चूना, वज्रलेप, सुधालेप आदि विभिन्न प्रकार की निर्माण सामग्री का उपयोग होता था। उस समय प्रेक्षागृह निर्माण के विशेषज्ञ भी थे, जो प्रेक्षागृह के निर्माण के समय स्तम्भों की संख्या आदि का निर्णय तत्कालीन आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार ले लेते थे। ऐसे प्रेक्षागृह निर्माण-विशेषज्ञों के लिए नाट्यशास्त्र में 'तज्ज्ञैः' शब्द का प्रयोग हुआ है। नाट्यशास्त्र में एक स्थल पर यह भी उल्लिखित है कि प्रेक्षागृह की रचना को देखकर महामना विश्वकर्मा ने तीन प्रकार के सन्निवेश (प्रेक्षामंडप) बनाए—

इह प्रेक्षागृह दृष्टवा धीमता विश्वकर्मणा
त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।

(ना॰ शा॰ 2/7)

इससे ऐसा जान पड़ता है कि भरत ने विश्वकर्मा को नाट्यगृह-निर्माणकर्ता के रूप में स्वीकार किया है। आधुनिक विद्वान डा० वाचस्पति गैरोला विश्वकर्मा को देवताओं का वास्तुविद और प्राचीन नाट्यशालाओं का निर्माण-विशेषज्ञ मानते हैं। उनका मत है कि विश्वकर्मा ने प्रथम नाट्यशाला कैलाश पर्वत पर बनाई थी। (वाचस्पति गैरोला-हमारी नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृष्ठ 65)

यह कैलाश पर्वत मानसरोवर के आसपास तिब्बत और चीन की सीमा पर है। यहीं पर कहीं, प्राचीनकाल में विश्वकर्मा की उक्त नाट्यशाला रही होगी। यदि पुरातत्ववेत्ता इस तथाकथित नाट्यशाला का अन्वेषण करें तो सम्भव है कि बर्फ की मोटी तह के नीचे इसके स्थापत्य अवशेष प्राप्त हो सकें। अभी पिछले दिनों मानसरोवर पहुंचे एक यात्री दल ने मानसरोवर के नीचे किसी नगर के होने की पुष्टि की है, क्योंकि वहां स्थापत्य अवशेष प्राप्त हुए हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृहों के तीन प्रकार बताए गए हैं। ये प्रकार हैं—विकृष्ट (आयताकार), चतुरस्त्र (वर्गाकार) एवं त्रयस्त्र (त्रिकोणाकार)। इन भवनों में से प्रत्येक के क्रमश: ज्येष्ठ, मध्यम और अवर (सबसे बड़ा, बीच का तथा सबसे छोटा) भेद किए गए हैं। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में सामान्यत: नौ नाट्यमंडपों का उल्लेख है। भरत के नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि उन दिनों भवन आदि की नपाई के लिए दंड या हस्त का प्रयोग किया जाता था। उन्होंने प्रेक्षाभवन के विभिन्न परिमाणों को मापने के लिए हाथ और दंड, दोनों का प्रयोग किया है। एक हाथ डेढ़ फुट के बराबर होता है तथा एक दंड चार हाथ के बराबर होता है। इन्हीं के आधार पर नाट्यशास्त्रानुसार प्रेक्षागृहों के विभिन्न परिमाण निम्नलिखित हैं—

(क) सबसे बड़ा प्रेक्षामंडप	108 हस्त = 162 फुट
(ख) बीच का प्रेक्षामंडप	64 हस्त = 96 फुट
(ग) सबसे छोटा प्रेक्षामंडप	32 हस्त = 48 फुट

नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह निर्माण सम्बंधी सूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये प्रेक्षागृह स्वतंत्र भवन के रूप में विद्यमान नहीं थे। ये भवन देव भवनों या राजभवनों से सम्बंद्ध निवेश थे। इसीलिए भरत ने सबसे बड़े ज्येष्ठ प्रेक्षाभवन को मंदिरों के लिए उपयुक्त बताया है। मध्यमाकार प्रेक्षागृह को राजभवनों के लिए तथा सबसे छोटे प्रेक्षागृह को शेष प्रजाजनों के लिए कहा है। सबसे छोटे प्रेक्षागृह से प्रजा के उन समृद्ध और सम्पन्न वर्ग की ओर संकेत हो सकता है, जो

अपनी निजी सम्पत्ति से ऐसे 'गृह' बना लेते थे। 'मृच्छकटिकम्' की नायिका बसंत सेना और 'कट्टनीमंत' की नायिका मालती ऐसी श्रेणी में आते हैं, जिनके अपने प्रेक्षागृह थे। आजकल भी फिल्मी नायकों के निजी थियेटर होते हैं।

उपरोक्त प्रेक्षागृह के आकारों के वर्गीकरण के विषय में यह समझना महत्व-पूर्ण है कि भरत ने तीन प्रकार के आकार तो निर्दिष्ट किए हैं, किन्तु उन्होंने बीच के आकार वाले प्रेक्षागृह की ही संस्तुति क्यों की है ? इसका कारण उन्होंने बताया है कि अधिक बड़े या अधिक छोटे प्रेक्षागृहों में रंगमंच (स्टेज) के पात्रों की विभिन्न भाव-भंगिमाए एवं स्वर के अस्पष्ट होने की सम्भावना रहती है। अधिक बड़े प्रेक्षागृह में रंगमंच से पात्रों द्वारा उच्चारित स्वर प्रेक्षास्थल की आगे की पंक्ति में बैठे प्रेक्षकों के कानों में चुभेगा तथा स्टेज से बहुत दूर अंतिम पंक्तियों में बैठे प्रेक्षकों को ऊंचा बोलने पर भी अस्पष्ट सुनाई देगा। इसके विपरीत किसी छोटे प्रेक्षागृह में रंगमंच से उच्चरित स्वर भवन के छोटा होने के कारण, उसके अंदर निकलने और फैलने का आकाश न होने से, गूंज वाला और विस्वर हो जाएगा। इन्हीं विसंगतियों के पैदा हो जाने की आशंका से भरत ने मध्यमाकार प्रेक्षागृह को सर्वश्रेष्ठ बताया है। प्राचीनकाल में ध्वनि यंत्रों का पर्याप्त वैज्ञानिक विकास न होने के कारण तत्कालीन प्रेक्षागृह विशेषज्ञों एवं नाट्य प्रयोक्ताओं को बहुत कुछ भवन के अंदर विद्यमान प्राकृतिक संरचना पर निर्भर होना पड़ता था। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भरत ने आयताकार प्रेक्षागृहों की छत को गुम्बदाकार (शैलगुहाकार) बनाने का निर्देश भी दिया है। इस प्रकार के मंडप से उच्चरित स्वर प्रेक्षकों तक स्पष्ट सुनाई देता है। भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह में रंगमंच-स्थल एवं प्रेक्षक-स्थल को बराबर भागों में विभक्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रेक्षक-स्थल पर प्रेक्षकों के लिए सुनियोजित आसनों की व्यवस्था और भवन के अंदर सीमित संख्या में द्वार और विभिन्न आकार की खिड़कियों के बनाने का वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र से पूर्व के साहित्य सूत्रों से हमें यह ज्ञात हो गया है कि तब प्रेक्षागृहों का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य था। यह सामान्यतः एक विशाल कक्ष होता था, जहां रंगमंच एक ऊंचा स्थल या चबूतरा था। किन्तु नाट्यशास्त्र के प्रेक्षागृह-निर्माण-विधानों से यह जानकारी मिलती है कि रंगमंच-स्थल के अनेक अंग और उपांग थे। रंगपीठ, रंगशीर्ष, नेपथ्य, मतवारिणी आदि ऐसे अवयव है, जिनका विस्तृत उल्लेख अगले अध्याय में किया गया है।

भरत के पूर्व साहित्य-सूत्रों से हमें ऐसी जानकारी नहीं मिलती, जिसमें आयताकार प्रेक्षागृह का संदर्भ मिला हो। तब प्रायः वृत्ताकार या वर्गाकार प्रेक्षागृह ही प्रचलित थे। स्थापत्यशास्त्र में भवनों के वर्गाकार, त्रिकोणाकार या वृत्ताकार बनाने की परम्परा बहुत पहले से ही थी, किन्तु प्रेक्षामंडप के आयताकार बनाने की परिकल्पना भरत-नाट्यशास्त्र में ही प्राप्त होती है। आयताकार प्रेक्षागृहों का अपना वैज्ञानिक महत्व है। ध्वनि को धीमा या तीव्र करने वाले संयंत्रों के अभाव में आयत प्रेक्षागृह के अंदर ध्वनि की गूंज स्वाभाविक रूप से कम होती है, क्योंकि रंगमंच से स्वर की ध्वनि तरंगें प्रेक्षास्थल की दीवारों एवं मध्य में ऊंची छत से टकराकर, भिन्न-भिन्न दूरियों में बंट जाती हैं। ये तरंगें एक बिंदु पर विस्वरता या अस्पष्टता नहीं होने देती हैं। ध्वनि-विस्तरण के सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण को आधार बनाते हुए ही भरत मुनि ने आयत प्रेक्षागृह की नवीन कल्पना की है। भरत की इस परिकल्पना का स्रोत दो प्रकार के तत्कालीन प्रेक्षागृहों की परम्परा से लिया गया है, जो इन दोनों का समन्वित स्वरूप है। उनके द्वारा उल्लिखित प्रेक्षागृहों के विषय में आधुनिक विद्वान राय गोविंद चन्द्र का मत है कि "भरत ने नाट्यशास्त्र में गुफा रूपी प्रेक्षागृहों के आकार को तथा आर्यों के तम्बूनुमा प्रेक्षागृहों के आकार को अपनाया है। उनका विचार है कि भारत के आदिवासी अपने नाटक गुफाओं में खेलते थे तथा आर्य खुले स्थानों में तम्बू गाड़ कर उनके अंदर खेलते थे।"

(राय गोविंद चन्द्र—'भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप', पृष्ठ 4)

भरत नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रेक्षागृह का जो विकसित और समुन्नत रूप मिलता है, उसे जानकर यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि प्राचीन प्रेक्षागृह आधुनिक प्रेक्षागृहों से पीछे नहीं थे। यह बात और है कि आधुनिक वैज्ञानिक चमत्कारों ने उसमें ध्वनि और प्रकाश की नई-नई सुविधाएं जोड़ दी हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त नाट्य, नृत्य, संगीत तथा कला-सम्बंधी प्राचीन ग्रंथों में भी प्रेक्षागृह-विषयक सामग्री प्राप्त होती है। यह सामग्री प्रेक्षागृहों के निर्माण तत्वों की विशेष जानकारी नहीं देती। किंतु प्राचीन प्रेक्षागृहों की परम्परा उस समय विद्यमान नाटक, संगीत, नृत्य तथा मनोरंजन आदि के कार्यक्रम किन्हीं विनियोजित प्रेक्षागृहों में आयोजित किए जाते थे, ऐसा बोध अवश्य कराती है।

भरत रचित नाट्यशास्त्र के पश्चात् शारदातनय द्वारा रचित 'भाव प्रकाश' में चतुरस्त्र, त्रयस्त्र और वृत्त प्रकार के प्रेक्षामंडपों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में वर्णित चतुरस्त्र नाट्यमंडप में राजा के साथ वारविलासिनी, अमात्य, वणिक, सेनापति, मित्र दर्शकों का वर्णन है। वृत्त रंगमंडप में राजा को परिजनों के साथ संगीत की योजना करते हुए दिखाया गया है। त्रयस्त्र रंगमंडप में रानी को पुरोहित आदि पात्रों के साथ प्रदर्शित किया गया है। शारदातनय ने 'भाव प्रकाश' में वृत्त रंगमंडप की सर्वप्रथम उद्भावना की है। इस ग्रंथ के अनुसार ये सभी रंगमंडप राजभवन से सम्बद्ध हैं। त्रयस्त्र में मार्गी संगीत, चतुरस्त्र में मार्गी एवं देशी मिश्रित संगीत तथा वृत्त में मार्गी-देशी संगीत के साथ और भी विचित्र क्रियाएं मिली रहती हैं।

'नाट्यसर्वस्वदीपिका' एवं 'नृत्य रत्नकोष' ग्रंथों में भरत द्वारा वर्णित विकृष्ट चतुरस्त्र तथा त्रयस्त्र रंगमंडपों का उल्लेख किया गया है। इन ग्रंथों में भी आयत प्रेक्षागृह को सर्वोत्तम बताया गया है। 'संगीतरत्नाकर' एवं 'संगीतमकरंद' नामक संगीतशास्त्रों में राजभवन से सम्बद्ध प्रेक्षामंडप का उल्लेख मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' में राजा एवं उनके कर्मचारियों की आसन व्यवस्था का वर्णन है। 'संगीतमकरंद' में नारद ने वर्गाकार नाट्य मंडप की कल्पना की है, जिसका परिमाण 96 × 96 फुट है। इसमें चार द्वार हैं, जिन्हें मूल्यवान हीरों से अलंकृत किया गया है। इन द्वारों पर सिल्क का सुंदर कपड़ा टंगा हुआ है। इसके मध्य में सुंदर और सुव्यवस्थित ऊंचा स्थल है, जिसका परिमाण बारह हस्त वर्ग है। इस प्रेक्षागृह में 24 स्तम्भ हैं, जो लकड़ी और पत्थर से निर्मित हैं, इन स्तम्भों पर सुंदर चित्र उत्कीर्ण हैं। इस प्रेक्षागृह में राजा के आसन को सिंहाकृति से सुसज्जित करने के लिए कहा गया है। इस आसन पर राजा अपने कर्मचारियों के साथ बैठा करता था। यह प्रेक्षागृह राजप्रासाद से सम्बद्ध है।

राजशेखर ने काव्य मीमांसा में सभा-मंडप के निर्माण विधान का प्रतिपादन किया है। राजशेखर ने काव्य गोष्ठी के लिए एक ऐसे रंगमंडप की कल्पना की है, जिसमें सोलह स्तम्भ, चार द्वार, आठ मतवारणियां बनाने का निर्देश है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' में कहा गया है कि रंगमंडप मंदिरों और राजभवनों से सम्बद्ध निवेश थे। इनमें नृत्य और अभिनय के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। इन रंग-मंडपों में प्रेक्षकों के लिए सुंदर आसन व्यवस्था थी। आसन पर चमड़े से ढकी गद्दियां होती थीं (राजतरंगिणी)।

कला ग्रंथों के अतिरिक्त प्राचीन प्रेक्षागृहों के अस्तित्व के संकेत प्राचीन वास्तुग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। इन संकेतों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारत में प्रेक्षागृहों का निर्माण किन्हीं वास्तुशिल्प-कला के सिद्धांतों पर होता था। 'मयमत' द्रविड़ वास्तु-शैली का ग्रंथ है। इस शास्त्र में वास्तुविद् मय ने रंगमंडप का पृथक अस्तित्व नहीं दर्शाया है। यह राजभवन का एक निवेश है। इस वास्तुशास्त्र के अनुसार रंगशाला में रंगपीठ (स्टेज) मध्य में होता था तथा सामने की ओर प्रेक्षकों के बैठने की पंक्तियां होती थीं। यह रंगशाला 'विमान' के परिमाण वाली कही गई है। रंगशाला में द्वितल तथा शिखर के निर्माण का निर्देश भी प्राप्त होता है। छठी शताब्दी में विश्वकर्मा द्वारा रचित 'मानसार' नामक वास्तुशास्त्र में भी प्रेक्षागृहों के कतिपय उल्लेख मिलते हैं। इस वास्तुशास्त्र में अलंकृत 'रंगशाला' प्रासाद में सम्बद्ध एक निवेश है। मंदिरों में भी गर्भगृह के साथ इसका निर्माण किया जाता था। इस शास्त्र के पैंतीसवें अध्याय में देवताओं, तपस्वियों, ब्राह्मणों, और अन्य वर्गों के लिए रंगशाला-निर्माण के निर्देश दिए गए हैं। इससे यह जानकारी मिलती है कि उस समय रंगशालाओं का सामाजिक महत्व था। और रंगशाला, नृत्यमंडप, नृत्यालय, नाट्यगृह आदि प्रेक्षागृहों के प्राचीन स्वरूप थे। इसी वास्तुशास्त्र में नौ तलों वाले मंदिर के मध्य एक रंगशाला का निर्देश है, जिसमें धार्मिक पर्वों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। एक अन्य स्थल पर 'आस्थान मंडप' नामक स्थल के मध्य वर्गाकार रंगशाला निर्माण का विधान भी दर्शाया गया है।

त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज से प्रकाशित प्राचीन वास्तु-शास्त्र 'शिल्प रत्न' में प्रेक्षागृह के निर्माण के लिए दो प्रकार के परिमाणों का उल्लेख है। देव मंदिरों में प्रतिमा के सम्मुख नाट्यमंडप बनाना चाहिए। 'नृत्यमंडप' की व्यवस्था राज-प्रासादों में बताई गई है। इन प्रेक्षामंडपों के परिमाण भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न तरह से निर्दिष्ट किए गए हैं। 'शिल्प रत्न' में वर्णित प्रेक्षागृह निर्माण-सिद्धांतों के आधार पर निर्मित 'कूथाम्बलम्' प्रेक्षागृह के स्वरूप केरल में त्रिचूर बैकुण्ठ नाथ के मंदिरों में देखे जा सकते हैं। मंदिरों के नाट्यमंडपों में धार्मिक अवसरों पर राजा तथा प्रजा के सम्मुख देवदासियों एवं अन्य पात्रों के द्वारा नृत्य नाटिकाएं प्रस्तुत की जाती थीं। भोज कृत समरांगण सूत्रधार में समृद्ध और विनियोजित नाट्यमंडप के संकेत मिलते हैं। इस ग्रंथ में चतुरस्त्र तथा आयत-इन दो प्रकार के नाट्यमंडपों का ही उल्लेख किया गया है। ऐसा लगता है कि

वृत्त तथा त्रिकोण प्रकार के नाट्यमंडपों की व्यवस्था आवश्यकतानुसार वर्गाकार और आयताकार प्रेक्षागृहों में कर ली जाती थी। भरत के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित प्रेक्षागृहों के परिमाणों जैसा ही प्रेक्षागृहों का परिमाण समरांगण-सूत्रधार में निर्दिष्ट किया गया है। एक अन्य वास्तुशास्त्र 'विश्वकर्म प्रकाश' में प्रतिपादित है कि रंगशाला की स्थापना राजगृह के समीप अथवा मंदिरों के समीप करनी चाहिए। ये प्रेक्षामंडप देव, गंधर्व और मनुष्य के लिए पृथक-पृथक कहे गए हैं।

कुछ प्राचीन वास्तुशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय प्रेक्षागृहों के विभिन्न स्वरूपों जैसे नाट्यमंडप, नृत्यमंडप, रंगमंडप की परम्परा निश्चित रूप से विद्यमान थी। इस प्रकार के नाट्यमंडपों में अभिनय, नृत्य या संगीत के ही कार्यक्रम प्रायः प्रस्तुत किए जाते थे। इससे स्पष्ट है कि प्रेक्षागृह की मुख्य भूमिका सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ललित कलाओं के क्षेत्र में मुख्य रूप से रही है।

(ग) प्राचीन नाट्य एवं कथा साहित्य में प्रेक्षागृहों की परिकल्पना

साहित्य के विभिन्न पहलुओं जैसे धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कला-शिल्प ग्रंथों में प्रेक्षागृहों की विस्तृत जानकारी मिलती है। इन साहित्य ग्रंथों के अतिरिक्त, प्रेक्षागृहों के विषय में जानने के लिए प्राचीन नाटकों में नाटककारों की तत्कालीन प्रेक्षागृहों की परिकल्पना तक पहुंचना अति आवश्यक प्रतीत होता है। कोई भी नाटककार अपनी रचना मंचित करने या करवाने के लिए ही करता है। निःसंदेह प्राचीन नाटककारों के मस्तिष्क में उन दिनों प्रचलित किन्हीं प्रेक्षागृहों का स्वरूप अवश्य विद्यमान रहा होगा, क्योंकि नाटकों की सार्थकता नाट्य प्रयोगों में ही निहित होती है। पाश्चात्य विद्वान जे० बी० प्रिस्टले के अनुसार नाटककार नाटकों की रचना अभिनय एवं मंचन के लिए ही करता है। जो रचनाकार केवल अध्ययन के लिए ही नाटक रचता है, वस्तुतः वह नाटककार नहीं है।

इस मत के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्राचीन समय में अभिनेय नाटकों की सार्थकता तत्कालीन प्रेक्षागृहों से प्रमाणित हो चुकी थी। अश्वघोष, भरत, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, दण्डी, भवभूति आदि ऐसे प्राचीन नाटककार हैं, जिनकी कृतियों में तत्कालीन प्रेक्षागृहों के स्वरूप लक्षित होते हैं।

अश्वघोष, भास और शूद्रक ईसा 300 और 200 वर्ष पूर्व के नाटककार हैं। इनके समय में नाटकों का अभिनय किसी स्थल-विशेष पर किया जाता था। अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' नाटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध के जन्म के अवसर पर नगर से बाहर किसी वाटिका में मनोविनोद के विभिन्न कार्यक्रमों को प्रस्तुत करके उत्सव मनाया गया था। उस समय इस आयोजन के लिए अस्थायी प्रेक्षास्थल का निर्माण कर लिया गया था। प्रेक्षकों को रंगमंच के कार्यक्रम बिना बाधा के स्पष्ट दिखाई दे सकें और वे सुविधापूर्ण आसनों पर बैठकर दृश्यों का आनंद ले सकें, इस उद्देश्य से यह अस्थायी रंगमंडप किन्हीं प्रेक्षागृह सिद्धांतों पर निर्मित किया गया था। एक अन्य कृति 'सौंदरनंद' में 'आनर्त' नामक स्थल को 'नृत्य-शाला' के रूप प्रयोग किया गया है। 'सारिपुत्र प्रकरण' नाटक के विषय में कहा जाता है कि इस नाटक का अभिनय सीताबेंगा गुफा स्थिति शैलगुहाकार नाट्य-मंडप में किया गया था। ईसा से 300 वर्ष पूर्व की यह नाट्यशाला पुरातत्व विभाग को उत्खनन में प्राप्त हुई है।

भास के तेरह नाटकों में मुक्ताकाशी प्रेक्षास्थल से लेकर भवन के अंदर बने आच्छादित प्रेक्षागृहों के विभिन्न स्वरूप परिलक्षित होते हैं। उनके प्रारम्भिक नाटकों की अपेक्षा उनके बाद के नाटकों में प्रेक्षागृह के उत्कृष्ट स्वरूप उपलब्ध हैं। भास के समय विशाल एवं विस्तृत प्रेक्षागृहों का प्रचलन भी था, क्योंकि 'उरूभंग' में युद्ध आदि के दृश्यों को रंगमंच पर दर्शाया गया है और जीवित जंगली जानवरों को भी रंगमंच पर दिखाया गया है। नाटक के अध्ययन से प्रेक्षागार के स्थान का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ये प्रेक्षागार नगर से बाहर किसी खुले मैदान में थे। आजकल सरकस दिखाने का विशाल प्रेक्षागार उक्त प्रेक्षास्थल से साम्यता रखता है। भास के अन्य नाटकों से ज्ञात होता है कि उनके कुछ नाटक देव भवन तथा प्रासादों से सम्बद्ध प्रेक्षागृहों में खेले गए, जहां पर प्रेक्षागृह विनियोजित रूप से बने थे। स्टेज दुमंजिला होता था। कभी-कभी त्रिधरातलीय मंच की आवश्यकता भी दिखाई गई है। पात्रों का ऊपर के प्रासाद से नीचे देखना और फिर उतर कर नीचे आना आदि क्रियाओं के लिए 'अधो विलोक्य', 'अवतीर्य', 'आरूह्य' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। एक ही समय पर अनेक दृश्यों को एक साथ ही दिखाने के लिए रंगमंच को बहुकक्षीय बनाया गया था। 'अभिषेक' नाटक में तीन दृश्यों को एक स्थल पर दिखाया गया है। इन तीन दृश्यों में सम्पूर्ण लंका नगर का दृश्य, रावण का विशाल प्रासाद तथा रावण

का प्रमद वन हैं। हनुमान, रावण के प्रासाद पर चढ़कर नीचे रावण का प्रमद वन देखते हैं। इसी नाटक के तीसरे अंक में विभीषण का प्रवेश स्टेज के ऊंचे धरातल पर होता है, वह पहले से ही नीचे धरातल पर आसनस्थ राम को देखकर, सीढ़ियों द्वारा नीचे उतरता है। इसी प्रकार 'अविमारक' नाटक में रंगमंच पर प्रासाद, उस पर चढ़ने का निर्देश, तदनंतर पात्र अविमारक द्वारा सीढ़ियों से उतरने का दृश्य दर्शाया गया है। 'प्रतिमा' नाटक में राजभवन से सम्बद्ध संगीत-शाला दर्शायी गई है, जो हमें यह विश्वास दिलाती है कि उस समय संगीतशाला नाट्यशाला के रूप में प्रयुक्त होती थी। 'चारूदत्त' और 'स्वप्नवासवदत्ता' भी ऐसे नाटक हैं, जिनमें प्रासाद, कक्ष आदि की व्यवस्था के लिए रंगमंच का बहु-धरातलीय और बहुखंडीय होना आवश्यक है।

शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' नाटक में अभिनय के लिए एक पारम्परिक रंगपीठ के संकेत मिलते हैं। प्रथम अंक में सूत्रधार रंगमंच पर प्रवेश करने पर, एक ओर घूम कर देखता है कि यह संगीतशाला शून्य है। तदनंतर भूख लगने पर अपने घर की ओर देखता है। इसके पश्चात् नेपथ्य की ओर मुंह करके अपनी पत्नी को बुलाता है। उसके घर के दृश्यों में एक युवती का चक्की पीसना तथा दूसरी का पुष्पों को गूंथना दर्शाया गया है। यहां चार भिन्न-भिन्न दृश्यों को दर्शाने के लिए रंगपीठ के कई भाग किए गए हैं। एक अन्य अंक में वसंतसेना का प्रासाद की छत पर चढ़ने का दृश्य इस बात को लक्षित करता है कि प्रेक्षागृह उस समय विकास के चरमोत्कर्ष पर थे। अनेक दृश्यों का एक ही समय पर, आजकल की भांति, पार्श्व दीप्ति (फ्लैश बैक) के बिना, स्टेज पर ही विभिन्न कक्षों की व्यवस्था द्वारा दर्शाना उस समय के विकसित रंगमंच कला का ज्वलंत उदाहरण है। मृच्छकटिकम् एवं कुट्टनीमत के नाटकों से ज्ञात होता है कि वसंतसेना और मालती आदि देवदासियां अपना निजी प्रेक्षागृह रखती थीं। इन ग्रंथों में ऐसी देवदासियों के प्रेक्षागृह का स्थान और स्वरूप निश्चित नहीं किया गया है। लेकिन अनुमान के आधार पर यह कह सकते हैं कि प्रेक्षागृह अपेक्षाकृत छोटे रहे होंगे। इनका स्थान देवदासियों के आवास के साथ ही नगर के बाहर अथवा मध्य में हो सकता है।

उपर्युक्त प्राचीन नाटकों के अतिरिक्त विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस', कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'विक्रमोर्वशीश' तथा 'मालविकाग्निमित्र' और भवभूति के 'उत्तररामचरित' नाटकों में भी पारम्परिक प्रेक्षागृहों का स्वरूप देखने को

मिलता है। इन नाटकों में प्रासाद आदि का रंगमंच पर दर्शाना, 'आरूह्य', 'अवतीर्य' 'अधोविलोक्य' आदि शब्दों का प्रयोग कई मंजिल वाले मंचों के अस्तित्व का प्रमाण है। प्रेक्षागृह के संदर्भ में इन नाटकों के परिशीलन से मुख्य और महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रायः तत्कालीन सभी नाटकों में नेपथ्य-स्थल को अभिनय-स्थल के रूप में प्रयोग किया गया है। यह स्थल विशेषतः अलौकिक दृश्यों को दर्शाने एवं स्टेज के अग्रभाग पर अभिनीत किए जा रहे विषय से पृथक विषय के दृश्यों की संयोजना के लिए प्रयुक्त है। एक उदाहरण है उत्तररामचरित के सातवें अंक में गर्भनाटक के दिखाने का उल्लेख मिलता है। इस गर्भनाटक के अभिनय से पूर्व वाद्य यंत्रों को हटाने का निर्देश प्राप्त होता है। भरत नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार अभिनव गुप्त के अनुसार वाद्य यंत्रों को नेपथ्य-स्थल पर रखा जाता था। इससे यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि उत्तररामचरित में उल्लिखित गर्भनाटक के अभिनय से पूर्व नेपथ्य-स्थल पर रखे वाद्य यंत्रों को हटाया गया था। तदनंतर उसी स्थान पर गर्भनाटक दर्शाया गया। यहां इसी संदर्भ में एक बात और उल्लेखनीय है कि उन दिनों रोम और यूनान की रंगशालाओं में भी नेपथ्य स्थल पर वाद्य यंत्रों (आर्केस्ट्रा) का स्थान निर्धारित था। जब कभी अलौकिक या नाटक के मुख्य कथावस्तु से इतर विषय पर कुछ दृश्यों को दर्शाना होता था, तो वहां पर भी नेपथ्य-स्थल का ही प्रयोग किया जाता था। उस समय नेपथ्य-स्थल स्टेज के पृष्ठ भाग में दो फुट से पांच फुट की ऊंचाई पर एक चबूतरे की भांति बनाया जाता था। यूनान की प्राचीन रंगशालाओं के ध्वंसावशेषों से ज्ञात होता है कि कभी-कभी नेपथ्य-स्थल को वास्तु-शिल्प की दृष्टि से कई स्तम्भों के ऊपर भी बनाया जाता था। आजकल नेपथ्य का अर्थ केवल ग्रीन रूम है, जहां पात्र अपनी वेषभूषा और सजावट करते हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में संगीतशाला का उल्लेख मिलता है। यह शाला राजप्रासाद का एक अंग थी। इसके अतिरिक्त कालिदास की अन्य कृतियों जैसे, 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' में क्रमशः 'दरीगृह' तथा 'शिलावेश्म' शब्द ऐसे पार्वत्य गुफाओं के प्रेक्षामंडपों की ओर संकेत करते हैं, जहां नागरजन कला का आनंद लेते थे। इन प्राचीन पार्वत्य प्रेक्षागृहों के अस्तित्व के विषय में यह सम्भावित है कि प्राचीनकाल में राजागण अपनी विजय यात्रा के मध्य मनोरंजन हेतु गुफाओं में नाट्यमंडप की व्यवस्था कर लेते हों, क्योंकि पहाड़ी गुफाओं की निम्नोन्नत भूमि प्रेक्षागृह की सरचना के लिए उपयुक्त होती है। यह ऊंची-नीची भूमि दर्शकों के बैठने तथा पात्रों की भूमिका-स्थल के अनुकूल थी। कुछ आधुनिक विद्वानों की

राय है कि ये गुफा स्थित नाट्यमंडप एक सामान्य, व्यवस्थित, विनियोजित प्रेक्षागृह का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसमें निर्मित प्रेक्षामंडप तत्कालीन 'विलास गृह' हैं, जिनका निर्माण, धनिकों एवं राजाओं द्वारा मनोविनोद के लिए हुआ था। राय गोविंद चन्द्र का मत है कि गुफाओं में निर्मित शिलावेश्म तथा दरीगृह जैसे इन नाट्यमंडपों में प्राचीन भारत के आदिवासी नाटक खेलते थे। पाश्चात्य विद्वान प्रो० मैक्डोनल ने 'दरीगृह' की दूसरे रूप में कल्पना की है। उनका विचार है—"इन दरीगृहों में प्राचीन मानव जीवन व्यतीत करता था, और इनके कुछ भागों में वह पूजा की सामग्री सजाता था और वहीं पर वह मूर्ति के समक्ष कुछ धार्मिक कार्य करता था।" मैक्डोनल के कथन से यह स्पष्ट है कि 'दरीगृह' वह स्थान विशेष था, जहां पूजा आदि होती थी। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों का उद्भव और विकास पूजागृह या पूजा स्थलों से ही हुआ है। भारत में यज्ञवेदी से प्रेक्षास्थलों की उत्पत्ति हुई तथा रोम के प्रेक्षागृह डायनोसिस देवता के मूर्ति स्थल से आरम्भ हुए हैं। भारतीय विद्वान जैसे डा० भगवतीशरण उपाध्याय के अनुसार ये शिलावेश्म एवं दरीगृह दृढ़ चट्टानों को काटकर देवालय रूप में बनाए जाते थे। सम्भवत: पूजा के पश्चात धार्मिक प्रचार-प्रसार हेतु तथा मनोरंजन के कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए इनका प्रयोग, कालांतर में, प्रेक्षागृहों के संदर्भ में होने लगा हो। डा० वाचस्पति गैरोला के मत से ये गृह प्राचीन नाट्यशालाओं के रूप हैं। इनमें प्राचीनकाल में 'कौमुदीमहोत्सव', 'वसंतोत्सव' पर मनोविनोद के विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन होता था। इन मतों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पहले केवल पूजा गृह थे, कालांतर में कुछ दरीगृह और शिलावेश्म प्रेक्षागृहों के स्वरूप बन गए। यद्यपि ऐसे प्रेक्षागृहों को सार्वजनिक प्रयोग के लिए व्यवस्थित, विनियोजित प्रेक्षागृहों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

आचार्य दण्डी कृत 'दशकुमार चरित' में 'कृत्रिम शैलगुहाकार प्रेक्षागृह' का संकेत मिलता है। इन प्रेक्षागृहों में कंदुकक्रीड़ा आदि अनेक कार्यक्रम मनोरंजनार्थ किए जाते थे। उस समय ऐन्द्रिक जाल का प्रदर्शन भी इन्हीं प्रेक्षागृहों में होता था। इस प्रकार के प्रेक्षागृह राजभवन के अंग होते थे और उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। इसके अतिरिक्त इस कृति में ऐसे संकेत भी प्राप्त होते हैं, जिनमें कभी-कभी जनसाधारण के लिए नगर से बाहर, उद्यान के मंदिरों के पास, अस्थायी प्रेक्षागृहों के रूप में समाज जुड़ते थे।

यहां इतना कहना पर्याप्त है कि प्राचीन नाटककारों की कृतियों में प्रेक्षागृहों की विभिन्न परम्पराओं और उनके निर्माण की विद्याओं की प्रचुर सामग्री मिलती है, जिनके आधार पर यह निश्चित होता है कि इन नाटककारों को उस समय प्रचलित प्रेक्षागृहों के स्वरूप का विस्तृत ज्ञान था। प्रेक्षागृहों की पृष्ठभूमि पर ही उन्होंने अपने नाटकों की रचना की, क्योंकि वे नाटक तत्कालीन प्रेक्षागृहों में अभिनय किए जाने योग्य थे।

इस प्रकार उपर्युक्त प्राचीन साहित्य में प्रेक्षागृह सम्बंधी ऐतिहासिक विवेचन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में तत्कालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परा को जीवंत बनाए रखने के लिए, प्रेक्षागृह या प्रेक्षागार के रूप में एक स्थल की विशेष आवश्यकता एवं उपयोगिता थी। इनका स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार का प्रचलन उन दिनों था। किन्तु स्थायी प्रेक्षागृहों का अस्तित्व आज की भांति स्वतंत्र भवन के रूप में नहीं था। ये प्रेक्षागृह अधिकतर राजभवनों और मंदिरों की छत्रछाया में नाट्यमंडपों, नृत्यमंडपों और संगीतशालाओं के रूप में पनपे। ये राजभवन और देवभवन से सम्बद्ध निवेश थे। इससे हम यह अनुमान लगाते हैं कि प्राचीन काल में प्रेक्षागृह सार्वजनिक प्रेक्षागृह के रूप में नहीं थे। ये प्रेक्षागृह व्यावसायिक भी नहीं थे। देव मंदिरों के प्रेक्षागृहों में किन्हीं धार्मिक पर्वों पर देवदासियों के द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में नृत्य और संगीत प्रस्तुत किए जाते थे, वहीं पर सामान्य सामाजिक इन कार्यक्रमों को देखकर मनोविनोद करता था। प्राचीन साहित्य के विभिन्न सूत्रों से यह भी देखने को मिलता है कि उस समय प्रेक्षागृहों का केवल सामाजिक या सांस्कृतिक महत्व ही नहीं था, अपितु राजनैतिक तथा आर्थिक सम्बंधों के क्षेत्र में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इन नाट्यकृतियों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय पहाड़ियों या गुफाओं में भी कुछ प्रेक्षास्थल थे। आदिवासी, देवदासी या विजय यात्रा पर जाते राजागण अपने यात्राकाल में मनोरंजनार्थ प्रेक्षागृहों का निर्माण पहाड़ी या गुफाओं में कर लेते थे। ऐसे कुछ प्रेक्षागृहों का ऐतिहासिक अस्तित्व पुरातत्व विभाग की ओर से उत्खनन में प्राप्त प्रेक्षागृह के कुछ ध्वंसावशेषों में मिलता है।

(घ) उत्खनन में प्राप्त प्रेक्षागृहों के अवशेष तथा मंदिरों एवं राजभवनों में प्रेक्षागृह का अस्तित्व

इतिहासकारों का मत है कि मनोरंजन और विनोद के साधन ईसा से कई शताब्दी पूर्व से ही आरम्भ हो गए थे। प्रारम्भ में ये नाचने-कूदने, उछलने तथा

उन्हें देखकर हंसने की प्रक्रियाओं तक ही सीमित रहे। कालांतर में सभ्यता के विकास-क्रम के साथ मनोरंजन के क्षेत्र में भी सुधार हुआ। लौकी, कद्दू के तुम्बे से तुरही ढोलक और बांस की पोरी में छेद बनाकर बांसुरी का आविष्कार तत्कालीन मानव ने अपने मनोरंजन की रुचियों को परिष्कृत करते हुए किया। कभी टोलियों में इधर से उधर घूमते हुए, हंसते-गाते अपनी ऐसी रुचियों को आगे बढ़ाते रहा, तो कभी एक स्थान पर एकत्रित होकर धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत करता रहा। इसके लिए उसने कभी पेड़ के नीचे, तो कभी किसी पहाड़ी की तलहटी, तो कभी पहाड़ी गुफा में अपना स्थान चुना। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य सभ्यता के प्रारम्भ से ही अपनी आवश्यकता और उपयोगिता के अनुसार मनोरंजन के साधन और उन्हें एक स्थान पर प्रस्तुत करने के लिए 'स्थल' विशेष को ढूंढ़ता और बनाता रहा।

इस वैज्ञानिक युग में यह कल्पना करना कितना कठिन है कि हजारों वर्ष पूर्व बड़े और ऊंचे स्तम्भों पर टिकी छत वाला विशाल कक्ष कभी प्रेक्षागृह का स्वरूप था, मनोरंजन के क्षेत्र में उसका महत्वपूर्ण स्थान था। नगर से दूर किसी पहाड़ी गुफा को प्रेक्षाकक्ष के रूप प्रयोग किया जाता था। आज उसे ही 'ओडिटोरियम' की संज्ञा दी जाती है। आज यद्यपि इन अति प्राचीनकालीन 'ओडिटोरियम' के ध्वंसावशेष ही प्राप्त होते हैं, किन्तु यहां यह बात उल्लेखनीय है कि किसी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति को तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक कलाओं से ही जाना जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में, भारत में उत्खनन में प्राप्त कुछ स्थापत्यावशेषों से यह सहज ही जाना जा सकता है कि प्राचीन काल में मनोरंजन के विभिन्न साधन थे और उन्हें सबके समक्ष प्रस्तुत करने का एक स्थल विशेष था। ऐसे स्थल विशेषों का वर्णन निम्नलिखित है।

मोहनजोदड़ो में प्राप्त एक विशाल कक्ष

सिंध प्रांत (आजकल पाकिस्तान में) के लरकाना जिले में सिंधु नदी के तट पर एक प्राचीन सभ्यता स्थित थी जिसे मोहनजोदड़ो के नाम से जाना जाता है। पुरातत्व विभाग द्वारा इस स्थान की खुदाई करने पर ज्ञात हुआ कि आज से 3500 वर्ष पूर्व यहां एक सुंदर नगर था। इस नगर की योजना सुव्यवस्थित ढंग से की गई थी। उस काल में मनुष्यों के लिए सुख और सुविधा-सम्पन्न परिवेश एवं आवास-गृहों का निर्माण किया गया था। यहां आवास गृहों के अतिरिक्त सार्व-

जनिक कुएं, भवन जैसे विद्यालय, अन्नागार, सभाकक्ष आदि के ध्वंसावशेष भी प्राप्त हुए हैं। चौड़ी-पतली सड़कें, उनके किनारे जल निकासी के लिए बनी नालियां और स्नान के लिए स्नानगृहों के अवशेषों से ज्ञात होता है कि उस समय की सभ्यता विकसित थी। विभिन्न प्रकार की कलाओं और शिल्प का भी तत्कालीन नागरिक को समुचित ज्ञान था। एक विशाल कक्ष से प्राप्त मिट्टी की सुंदर मूर्तियों और अस्पष्ट संगीत उपकरणों से यह सहज ही जाना जा सकता है कि तत्कालीन मानव अभिनय, संगीत, नृत्य और प्रेक्षास्थल से अनभिज्ञ नहीं था।

मोहनजोदड़ों नगर के पश्चिम की ओर एक कोटला (दुर्ग) मिला है, जो ऊंचे टीले पर है। कोटला के दक्षिण भाग में 90 फुट का वर्गाकार विशाल कक्ष प्राप्त हुआ है। इसमें ईंटों से बने 20 चौकोर स्तम्भ हैं, जिन पर कभी छत टिकी हुई थी। इस कक्ष का उत्तरी भाग ढलुवां हैं। स्तम्भों को सेतु पद्धति से एक-दूसरे से जोड़ा गया है। इस प्रकार कक्ष के अंदर 20 स्तम्भों की योजना चार पंक्तियों में की गई है। प्रत्येक पंक्ति में पांच-पांच स्तम्भ हैं। स्तम्भों के मध्य टूटी हुई चौकियां स्थित हैं, जो सम्भवत: प्रेक्षकों के आसन के रूप में प्रयोग की जाती होंगी। यह विशाल कक्ष सम्भवत: वर्गाकार प्रेक्षाकक्ष का प्राचीन स्वरूप है, जिसमें सीमित संख्या में सामाजिक बैठते होंगे। इसकी छत का उत्तरी-पूर्वी भाग का ढलुवां होना प्रेक्षागृह के निर्माण-सिद्धांतों को अनुप्राणित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिधर छत में अधिक ढालू है, वहां पर स्टेज की व्यवस्था की जाती होगी। प्रेक्षागृह-निर्माण-विशेषज्ञों का मत है कि स्टेज की छत सम्पूर्ण कक्ष की छत से अपेक्षाकृत नीची और ढालू होती है, ऐसा करने का कारण यह है कि स्टेज से बोले गए स्वर में एक तो गूंज नहीं होती, दूसरे कक्ष के अंदर स्वर की तरंगों को फैलने का आकाश मिलने से वे तरंगें लौटकर रंगमंच पर पुन: नहीं आतीं, इससे प्रेक्षकों को स्पष्ट स्वर सुनाई देता है। इस नियम का व्यवहार आज भी वास्तुविद सिनेमा गृह और प्रेक्षागृहों के निर्माण में करते हैं। मोहनजोदड़ों के इस विशाल कक्ष के विषय में श्री प्रसन्न कुमार आचार्य का मत है कि यह सिंधु सभ्यता का एक प्रेक्षागृह है। उत्खनन में प्राप्त नटों की टूटी मूर्तियों तथा अस्पष्ट संगीत उपकरणों से यह तो प्राय: निश्चित है कि तत्कालीन समाज में मनोरंजन-हेतु कुछ कार्यक्रमों के आयोजन होते थे। ये आयोजन विशाल कक्ष में सम्पन्न किए जाते थे। इस कक्ष के ध्वंस स्थापत्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय ये प्रेक्षागृह स्वतंत्र भवन के रूप में प्रचलित थे, क्योंकि इस कक्ष के पास किसी मंदिर अथवा राजभवन के ध्वंसावशेष नहीं मिलते हैं।

सीताबेंगा गुफा

भारत की विभिन्न पहाड़ियों की गुफाओं में स्थायी प्रेक्षागृह होने के कुछ संकेत प्राप्त होते हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण सीताबेंगा गुफा है।

मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले के निकट रामगढ़ की पहाड़ियों में अनेक गुफाएं हैं। ये गुफाएं सीताबेंगा, जोगीमारा, लक्ष्मणबोगरा आदि नामों से जानी जाती हैं। सीताबेंगा सबसे बड़ी गुफा है। इस कंदरा की खोज डा०जे०एच० ब्लाख ने 1903 में की थी। सीताबेंगा और जोगीमारा की गुफाएं रामगढ़ पहाड़ी (कालीदास वर्णित रामगिरी के उत्तरी भाग के पश्चिमी ढलान पर निर्मित हैं। उत्तरी गुफा का नाम सीताबेंगा, जो राम की पत्नी के नाम पर पड़ा प्रतीत होता है, तथा दक्षिणी गुफा का नाम जोगीमारा है। सीताबेंगा और जोगीमारा गुफाओं के अंदर प्राकृत भाषा में लेख उत्कीर्ण हैं। ये लेख अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं। इस आधार पर इसका निर्माण-काल ईसा पूर्व 200 या 300 वर्ष स्वीकार किया जा सकता है। डा० ब्लाख के मत से यह गुफा प्राचीनकालीन प्रेक्षामंडप थीं, जो कालांतर में आक्रमणकारियों द्वारा ध्वंस-लीला का शिकार हो गईं। किन्तु वर्तमान समय में, इसके प्राचीन नाट्यमंडप के होने के जो संकेत प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर निश्चित रूप से इन्हें तत्कालीन गुफास्थित 'नाट्यमंडप' कहा जा सकता है। ऐसे संकेतों की जानकारी निम्नलिखित है।

जोगीमारा गुफा में प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि इन गुफाओं में सुतनुका नाम की देवदासी रहती थी। उसके साथ उसका रूपदक्ष प्रेमी देवदत्त भी रहता था, जो काशी का निवासी था। डा० ब्लाख ने इस लेख से यह निष्कर्ष निकाला है कि उस समय नट या नर्तकियां अपने कार्यक्रमों को पास ही कहीं प्रस्तुत करके वहां आकर रहती थीं। यह पास का नाट्यमंडप या प्रेक्षामंडप अन्य गुफाओं से बड़ी होने के कारण सीताबेंगा गुफा ही हो सकती है। इस गुफा में विशेषत: तत्कालीन नाट्यमंडप था। इसी गुफा के पास एक मंदिर है, जहां उन दिनों किन्हीं विशेष धार्मिक पर्वों पर मेला लगता था। मेले में आने वाले अनेक यात्रियों के मनोरंजनार्थ इस गुफा में नाटक, नृत्य, संगीत या कविता पाठ होता था। जैसा कि सीताबेंगा गुफा में प्राप्त ब्राह्मी लिपि के लेख से ज्ञात होता है।

अदिपयंति हृदय।
सभानागरूकवयो ए रात य···

दुले बसंतिया । हासा बनुभूते ।
कुद स्फतं एवं अलंग । त । ... ।"

डा० ब्लाख ने इस लेख से यह अर्थ निकाला है—"स्वभावतः प्रिय कवि हृदय को दीप्त करते हैं। बसंत पूर्णिमा को ढोलोत्सव के समय हास्य और गीतों के मध्य गले में कुंद पुष्प की माला पहनते हैं।"

इससे यह सिद्ध होता है कि सीताबेंगा गुफा में प्रेक्षामंडप का एक स्वरूप था। इसमें कविता-पाठ, नृत्य और नाट्याभिनय से लेकर अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे। वर्तमान युग में भी किन्ही धार्मिक मेलों में रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। मेरठ के नौचंदी के मेले में नवचंडी मंदिर के पास ही निर्मित प्रेक्षागार में एक सप्ताह तक सांस्कृतिक और रंगारग कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। सम्भवतः यह परम्परा काफी प्राचीन है। इसी परम्परा ने प्रेक्षागृह के क्रमिक विकास को विभिन्न स्वरूपों में बढ़ाया।

सीताबेंगा को देखने से ज्ञात होता है कि प्रेक्षक के बैठने वाला स्थल अर्द्ध वृत्ताकार है। इसमें प्रेक्षकों के बैठने के लिए सीढ़ियां बनी हैं, जिन पर गद्दे डाल-कर बैठा जाता होगा। गुफा के बाहर भी सामने की ओर कुछ पत्थर के आसन निर्मित हैं। इन पर शरद या बसंत के पूर्णिमोत्सव पर प्रेक्षक खुले आकाश के नीचे बैठकर कार्यक्रमों को देखकर आनंद लिया करते थे। ये आसन लगभग साठ प्रेक्षकों के लिए हैं।

सीताबेंगा गुफा का प्रवेश द्वार सबसे ऊपर वाली अर्द्धचन्द्राकार सीढ़ी से ऊंचा है। यहां से गुफा का अंतर्भाग आरम्भ हो जाता है। गुफा के अंदर की लम्बाई 44 फुट, चौड़ाई 24 फुट तथा गहराई 15 फुट है। गुफा के मुख की ऊंचाई साढ़े छह फुट है तथा अंदर यह कुछ कम हो गई है। गुफा के अंदर प्रवेश करने के लिए बाई ओर सीढ़ियां निर्मित हैं। सम्भवतः ये सीढ़ियां उस समय गुफा के अंदर रंगपीठ (स्टेज) पर पात्रों के आने-जाने के लिए बनीं थीं। इस गुफा में तीन धरातलों में स्टेज बना हुआ है। प्रत्येक धरातल की चौड़ाई साढ़े सात फुट है और तीनों मंचों की सतह एक-दूसरे से दो फुट ऊंची है। ये मंच कुछ-कुछ ढलुवां हैं। स्टेज के विषय में विभिन्न विद्वानों का मत है कि ऐसे स्टेज की उक्त लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई ऐसी नहीं है कि अभिनय किया जा सके। किन्तु अनुमान है कि नाट्याभिनय की किसी विशेष आवश्यकता होने पर स्टेज का अग्रभाग खड़े होकर अभिनय करने के काम आता रहा होगा और पृष्ठभाग बैठकर अभिनय

करने के काम आता रहा होगा। गुफा के मुख द्वार पर मंचों के सामने दो गहरे छिद्रों से प्रतीत होता है कि नाट्य-प्रयोग के समय इनमें बांस या बल्ली लगा कर पर्दा लगाया जाता था। यह पर्दा तिरस्करण (यवनिका) का काम करता था। सीताबेंगा गुफा के अंदर भित्ति चित्रों के द्वारा 'विलास लीला' का विषय प्रस्तुत किया गया है।

कुछ विद्वानों ने इन गुफाओं में प्राप्त नाट्य मंडल को भरत नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रेक्षागृह पर आधारित माना है। उनके इस विचार के आधार भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह के लिए प्रयुक्त कुछ नियम हैं।

1. सीताबेंगा गुफा की लम्बाई 44 फुट तथा चौड़ाई 24 फुट है। यह भरत के द्वारा वर्णित विकृष्ट प्रकार के सबसे छोटे आकार 48 × 24 फुट के लगभग समान है। भरत ने इस प्रकार का मंडप मनुष्यों के लिए बनाए जाने का निर्देश दिया है।

2. भरत ने एक स्थल पर लिखा है कि प्रेक्षागृह शैलगुहाकार होना चाहिए। भरत के इस नियम से यह गुफा शैलगुहाकार प्रेक्षागृह का प्रतिनिधित्व करती है।

3. भरत का मत है कि रंगपीठ और रंगशीर्ष दो धरातल वाला होना चाहिए। इस गुफा में तीन धरातल वाला रंगमंच प्राप्त होता है।

4. प्रेक्षकों के लिए सोपानाकृति आसन होने चाहिए। भरत निर्दिष्ट इस नियम के अनुसार इस गुफा में प्रेक्षकों के लिए आसन व्यवस्था सोपानाकृति है। इससे नाट्यशास्त्र के प्रेक्षागृह निर्माण विधान का अनुकरण दृष्टिगोचर होता है।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि यह प्रेक्षागृह सुव्यवस्थित रूप से निर्मित नहीं है। इसमें न तो कोई काष्ठ या इष्टिका कर्म किया गया है, न ही इसकी विनियोजिता आंतरिक सज्जा है। दूसरे इस प्रेक्षामंडप को नगर से दूर निर्जन और बीहड़ स्थान में बनाने की क्या तुक है। क्योंकि नाट्याभिनय एक सामाजिक कला है, अतः जन कोलाहल से दूर स्थानों में किसी नाट्यमंडप की सार्थकता नहीं रहती। अतः यह नाट्यमंडप न होकर तत्कालीन समृद्ध व्यक्तियों के विलासगृह थे। जोगीमारा गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि 'सुतनुका' देवदासी ने इस गुफा में नाट्यमंडप अपने मित्र देवदत्त के लिए बनवाया था।

इस गुफा का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि यह शैलकंदरा स्थित नाट्य मंडप सार्ववर्णिक लोक नाट्यमंडप नहीं था। गुफा का यह प्रेक्षामंडप 'मृच्छकटिकम'

की बसंतसेना तथा 'कुट्टनीमत' की मालती के निजी प्रेक्षागृह के समान सुतनुका देवदासी का अपना प्रेक्षागृह था, जिसे उसने आवश्यकतानुसार कांट-छांट कर एक प्रेक्षागृह का स्वरूप दे दिया था। इस कंदरा स्थित शैल प्रेक्षामंडप में यह आवश्यक नहीं था कि नाट्य प्रयोग ही किए जाएं, अपितु नृत्य, संगीत तथा काव्य गोष्ठी का आनंद भी मित्र मंडली के साथ लिया जाता रहा होगा। इस प्रकार के आयोजन धार्मिक या ऋतु पर्व पर होते रहे होंगे, जिनमें कुछ उत्साही राजसी प्रेक्षक विशेषतः आमंत्रित होते होंगे। कालिदास ने सम्भवतः गुफा स्थित ऐसे प्रेक्षागृहों का संकेत 'दरीगृह' या 'शिलावेश्म' द्वारा किया है। अश्वघोष के नाटक 'सौंदर नंद' में भी ऐसे गुफा स्थित नाट्यमंडप का उल्लेख मिलता है, जो विलास लीला के लिए प्रयुक्त होते थे। पुनः ऐसा कहना निर्विवाद है कि प्राचीन काल में गुफाओं के इन प्रेक्षागृहों में संस्कृत नाट्यों का अभिनय किया जाता था। अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण' तथा भवभूति के 'उत्तररामचरित' नाटकों का अभिनय इन गुफा स्थित प्रेक्षागृहों में हुआ था।

अंत में सीताबेंगा गुफा के सम्बंध में यह कहना उपयुक्त है कि यह गुफा स्थित प्रेक्षामंडप प्राचीन प्रेक्षागृहों का एक स्वरूप है। यद्यपि यह वास्तुशिल्प के मूल सिद्धांतों पर निर्मित एक सुनियोजित प्रक्षागृह नहीं है, तथापि इसके निकट देव मंदिर में किन्हीं उत्सवों पर सामाजिक एकत्रित होते थे और वे इन गुफा मंडपों में सामूहिक रूप से मनोरंजन के कार्यक्रमों का आनंद लेते थे। इस गुफा में यवनिका को टांगने के छिद्र, निम्नोन्नत भूमि प्रेक्षकों के आसन, ऊंचा मंच— इस बात के निश्चित प्रमाण देते हैं कि सर्वप्रथम किसी समय आरम्भ में यह गुफा नृत्य, काव्य-गोष्ठी, या संगीत के लिए प्रयुक्त होती थी। कालांतर में इसे आवश्यकतानुसार नाटकों के अभिनय के लिए नाट्यशाला के रूप में परिवर्तित कर दिया होगा। निःसंदेह यह प्राचीन प्रेक्षागृहों का एक सामान्य नमूना है।

नागार्जुन कोंडा

आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के किनारे अमरावती की शृंखलाएं हैं। यहीं पर गुंटूर नगर में कृष्णा नदी के तट पर बसा नागार्जुन कोंडा नामक प्राचीन स्थान है। पुरातत्ववेत्ताओं ने, यहां पर उत्खनन में प्राचीन मुक्ताकाशी रंगशाला (एम्फी-थिएटर एवं एक रंगमंडप के स्थापत्यावशेषों को प्राप्त किया है। इन स्थापत्याव-शेषों के पास ही एक राजप्रासाद के ध्वंसावशेष भी मिले हैं। इससे अनुमान किया

जाता है कि ये मुक्ताकाशी एवं आच्छादित रंगशालाएं राजप्रासाद से सम्बद्ध रही होंगी। राजप्रासाद के उत्तर में निर्मित यह मुक्ताकाशी रंगशाला मल्लयुद्ध के प्रदर्शन के लिए मल्लशाला के रूप में प्रयुक्त होती थी। रंगशाला के पश्चिम की ओर एक अन्य मंडप है, जहां सम्भ्रांत वर्ग के सामाजिकों की विशेष आसन व्यवस्था का प्रबंध था। यह रंगशाला बाहर की ओर से 300 × 280 फुट के परिमाण वाली है। इसके अंदर प्रेक्षक-स्थल एवं रंगमंच की व्यवस्था आयताकार रूप से की गई है। इसके मध्य में व्यवस्थित रंगमंडप की लम्बाई, चौड़ाई 55 × 46 फुट है तथा इसके तीन ओर लगभग साढ़े तीन फुट की ऊंचाई वाली दीवारें हैं। इसके एक ओर ऊपर को क्रमशः ऊंची होती हुई गैलरी बनी हुई है, जिसकी चौड़ाई आठ फुट और ऊंचाई लगभग 29 फुट है। इसके प्रवेश स्थल पर पत्थर के कुछ आसन हैं, जिसमें से एक आसन पर 'कामसार' नाम अंकित है। ऐसा माना जाता है कि यह नाम किसी प्रसिद्ध नर्तक का है। प्रेक्षकों के लिए रंगमंडप के चारों ओर सीढ़ियों में आसन निर्मित हैं। आसनों की ये सीढ़ियां दो फुट चौड़ी हैं तथा सीढ़ियों की परस्पर ऊंचाई का अंतर एक फुट है। यह रंगशाला पक्की ईंटों की बनी है। रंगशाला के चारों ओर विशाल क्षेत्र है, सम्भवतः यहां कभी धार्मिक मेले लगते होंगे, उस समय यह रंगशाला प्रवचन, मल्लयुद्ध प्रदर्शन के लिए प्रयुक्त होती रही हो। इस रंगशाला का निर्माण काल ईसापूर्व 300 वर्ष का माना जाता है। यही समय बौद्ध धर्म का भी था। अतएव कुछ विद्वान इसे 'विहार' या 'समाज' के लिए प्रयुक्त स्थल मानते हैं। उनका मत है कि बौद्ध काल में किन्हीं निर्जन या पहाड़ी स्थानों पर बौद्ध धर्म समर्थकों के समक्ष धर्म सम्बंधी उपदेश आदि के लिए ऐसे स्थान प्रयुक्त होते रहे हैं।

आजकल यह एम्फी थियेटर कृष्णा नदी के बांध की सतह में डूबा हुआ है। पुरातत्ववेत्ताओं ने इस एम्फी रंगशाला का प्रारूप बनाकर ऊपर के स्थान पर रखा है।

नागार्जुन कोंडा में प्राप्त उक्त मुक्ताकाशी रंगशाला के अतिरिक्त उसी स्थान पर पुरातत्ववेत्ताओं ने एक अन्य प्राचीनकालीन आच्छादित रंगमंडप के ध्वंसावशेष भी प्राप्त किए हैं। इस रंगमंडप में नक्काशी वाले सुसज्जित 36 स्तम्भ हैं। रंगमंडप में एक ऊंचा चबूतरा है, जिस पर पीछे की ओर नेपथ्य कक्ष की व्यवस्था है। रंगमंडप में टेराकोटा का एक चिह्न प्राप्त हुआ है। इस टोकन पर 'सारसिक' नाम अंकित है। मिट्टी से बने इस चिह्न के विषय में पुरातत्ववेत्ताओं एवं इतिहास-

कारों का मत है कि यह चिह्न रंगमंडप में कार्यक्रमों के समय एक 'प्रवेश चिह्न' के रूप में प्रयोग किया जाता था। रंगमंडप के समीप ही एक स्थल पर 'शांतामूल नामक राजा की स्मृति में एक स्मारक स्तम्भ है। इस पर अंकित अभिलेख में 'कुसुममाला' नाम मिलता है। यह सम्भवतः राजनर्तकी थी, जो रंगमंडप में राजा के लिए अपने नृत्य और संगीत के कार्यक्रमों को प्रस्तुत करती थी। पुरातत्ववेत्ता इस रंगमंडप का निर्माणकाल 200 ईसा पूर्व का मानते हैं। इस प्रकार नागार्जुन कोंडा स्थान पर प्राप्त एम्फी थियेटर एवं आच्छादित रंगमंडप प्राचीन प्रेक्षागृहों के अस्तित्व के विषय को परिपुष्ट बनाने में पर्याप्त प्रमाण हैं।

कुम्मरहार में प्राप्त सभाभवन

बिहार प्रांत के पटना नगर के उत्तर में स्थित कुम्मरहार नामक ग्राम में पुरातत्व उत्खनन में स्थापत्य के ध्वंसावशेष मिले हैं। कर्नल वैंडेल जैसे पुरातत्व-वेत्ता ने अपने अन्य साथियों के साथ 1882 में प्राचीन राजधानी पाटलीपुत्र तथा उसके आसपास की भूमि में खुदाई का कार्य आरम्भ करवाया। कुम्मरहार गांव के पश्चिम तथा दक्षिण की ओर क्रमशः 'कट्टु' और 'चयन' नामक तालाब हैं। इन दोनों तालाबों के मध्य की भूमि आसपास की भूमि से अपेक्षाकृत ऊंची उठी हुई एक टीले के समान है। इसी स्थान पर उत्खनन में मौर्यकालीन स्थापत्य अवशेष मिले हैं। इन अवशेषों में एक विशाल सभाभवन के ध्वंसावशेष भी प्राप्त हुए हैं।

इस सभाभवन की लम्बाई लगभग 300 फुट तथा चौड़ाई 250 फुट है। पुरातत्ववेत्ता कर्नल वैंडेल ने मौर्य ओप से युक्त कुछ पत्थर, तराशे हुए पत्थर भी प्राप्त किए हैं। डा० स्पूनर के निर्देशन में यहां पर उत्खनन कराया गया। परिणामस्वरूप गुप्त कालीन अवशेषों के नीचे लगभग एक फुट मोटी राख की तह मिली। इस तह के नीचे एक बड़े क्षेत्र में 15-15 फुट के अंतर में ओपयुक्त पत्थरों के स्तम्भ पृथ्वी के अंदर धंसे हुए मिले हैं। प्रत्येक स्तम्भों की ऊंचाई लगभग 21 फुट की है। इस उत्खनन में स्तम्भों को पृथ्वी के अंदर गाड़ने की तात्कालीन विचित्र प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। भवन निर्माण के समय इन स्तम्भों को किसी दृढ़ आधार पर न टिकाकर लकड़ी की चौकियों पर खड़ा किया गया है। तदनंतर लकड़ी की इन चौकियों को जमीन के अंदर गहरा गाड़ा गया है। इस सभाभवन या वृहद प्रेक्षागृह में 80 स्तम्भों को खड़ा किया गया है। ये

स्तम्भ प्रेक्षागृह की लम्बी-चौड़ी छत को सहारा देने के लिए हैं। 10-10 खम्भे आठ पंक्तियों में पूरब और पश्चिम में लगाए गए हैं। प्रेक्षागार के पूर्वी भाग में दो अन्य स्तम्भों का स्थापन है। ये स्तम्भ सम्भवतः राजा के सिंहासन को सम्हालने के लिए विशेषतः लगाए गए हैं। इस प्रेक्षागार की छत और फर्श लकड़ी के बने हुए हैं। इस प्रेक्षागृह के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यह चन्द्रगुप्त मौर्य के समय तक बन चुका था। इसमें तत्कालीन नगरवधुएं विशेष पर्वों पर नृत्य और संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करती थीं। इसके अतिरिक्त किन्हीं राजनैतिक विचार विमर्श एवं प्रवचन हेतु भी इस सभा भवन को प्रयोग में लाया जाता था। इस भवन के पास राजप्रासाद के ध्वंसावशेष से पता चलता है कि यह सार्वजनिक भवन नहीं था, राजप्रासाद का ही द्वितीय अंश था। इसी के साथ ही शेष भाग में अश्वशाला, हस्तीशाला तथा कुछ राज कर्मचारियों का निवास स्थान है।

इस प्रेक्षागार और इसके पास ही बने सुंदर राजप्रासाद को देखकर चीनी यात्री फाह्यान ने पाटलिपुत्र में शिल्पियों की स्थापत्य-शिल्प की दक्षता और कुशलता देखकर कहा था कि...नगर के मध्य स्थित राजप्रासाद तथा सभा भवन आदि सभी उन देवताओं द्वारा निर्मित किए गए थे, जिनको अशोक ने नियुक्त कर रखा था। उन्होंने ही ऐसे ढंग से पत्थर एकत्र किए, दीवारों तथा तोरणों को खड़ा किया, चित्ताकर्षक नक्काशी तथा सुंदर मूर्तियों को उत्कीर्ण करने का कार्य किया (कृष्ण दत्त वाजपेयी, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ० 58-59)

इस सभाभवन के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यह महाभारत के सभापर्व (6/11) में वर्णित युधिष्ठिर के सभाभवन के सादृश्य हैं। पाटलिपुत्र में प्राप्त मौर्यकालीन सभा भवन के अवशेष महाभारत वर्णित अन्य सभा भवनों से साम्यता रखता है।

उदयगिरि गुफाओं में स्थित प्रेक्षामंडप

उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी एव खांडगिरि की पहाड़ियों में अनेक गुफाओं की शृंखलाए हैं। इन गुफाओं का निर्माण-काल ई० पूर्व 1000 से 75 वीं शती है। इन गुफा-श्रेणियों में हाथी गुफा, रानी गुफा और अनंत गुफा विशेष उल्लेखनीय हैं। ये गुफाएं जैनकालीन हैं। इनमें से रानी गुफा में प्राचीन प्रेक्षागृह के ध्वंसावशेष प्राप्त होते हैं। गुफा-स्थित यह दुमंजिला प्रेक्षामंडप, राजा खारवेल के द्वारा गुफा को काटकर प्रेक्षागृह के रूप में बनाया गया था।

इस गुफा में प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि नाट्य संगीत, नृत्य की ललितकलाओं में रुचि एवं ज्ञान रखने वाला यह राजा 'गंधर्व बुद्ध' नाम से भी जाना जाता था । इस गुफा का आकार आयताकार तथा अंग्रेजी के अक्षर 'L' की भांति है । इसमें दो कक्ष हैं, जो ग्रीन रूम की भांति प्रयोग होते थे । ये नीचे की मंजिल पर 'हारिती' की समाधि के पास है । इस गुफा के अंदर एक ओर भित्ति-चित्र उत्कीर्ण है, जिस पर चित्रित रंगमंच पर एक नर्तकी को चार प्रकार के वाद्य यंत्रों को बजाने वाले वादकों के साथ, नृत्य करते हुए दर्शाया गया है । इस आयताकार रंगमंच पर चार सुसज्जित स्तम्भ स्थित हैं । इन पर नर्तकियों के चित्र उत्कीर्ण हैं । स्तम्भों की वास्तुशिल्प संरचना अशोक कालीन खम्भों से सादृश्य रखती है । इन स्तम्भों का, छत की ओर वाला, ऊपरी भाग 'कटोरे' की भांति चौड़ा और गोल है । चार स्तम्भों से युक्त रंगमंच स्थल की परम्परा भरत नाट्य शास्त्र के प्रेक्षागृह-विधान में परिलक्षित होती है । आज भी प्राचीन शैली पर बने दक्षिण भारत के प्रेक्षागृहों में रंगमंच ऐसे ही होते हैं । इस प्रकार के रंगमंडप पर कथकली, यक्षगान नाट्यशैली का प्रयोग होता है । रानी गुफा के प्राचीन प्रेक्षा-मंडप की अन्य भित्तियों पर विभिन्न दृश्यों से सम्बद्ध अनेक चित्र उत्कीर्ण हैं, जिन्हें देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह ईसा से पूर्व का प्रेक्षामंडप है । इस स्थल पर कभी सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक आयोजन सामाजिकों के सम्मुख सम्पन्न किए जाते थे । ऐसा भी सम्भव है कि जैनकालीन 'समाज' की व्यवस्था इस गुफा में की जाती थी । इसमें प्रेक्षक नीचे स्तम्भों से युक्त दर्शक दीर्घा में बैठते थे तथा गुफा के अंदर बाएं हाथ पर राजा एवं अन्य विशिष्ट व्यक्तियों की आसन व्यवस्था थी । इस दुमंजिले प्रेक्षा-मंडप व दोनों धरातलों का अंतर लगभग आठ फुट है, इसके ऊपर का धरातल ढालू है । इसमें 12 स्तम्भ हैं । इसके द्वारों के ऊपर मूर्तिशिल्प का कार्य बड़े कौशल के साथ किया गया है ।

रानी गुफा में स्थित प्रेक्षामंडप यद्यपि नगरों में बने प्रेक्षागृहों जैसे सुनियोजित एवं सम्पन्न नहीं है, तथापि इसकी निम्नोन्नत भूमि पर रंगमंच स्थल एवं प्रेक्षक-स्थल की व्यवस्था, लम्बी और ऊंची, उल्टे 'U' के आकार की छत का होना तथा अनेक भित्तिचित्रों से युक्त यह गुफा प्राचीन कालीन शिलावेश्म (पहाड़ियों में स्थित प्रेक्षामंडप) है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में मनीषियों ने धर्म को एकांतिक शुष्क रूप न देकर उसमें उदात्त श्रृंगार तथा लोकाचार के लिए मनोरंजन के

तत्वों का समावेश किया था और इन मनोरंजक तत्वों को सामाजिकों एवं धर्मावलम्बियों के समक्ष, रानी गुफा जैसे प्रेक्षागृहों में प्रस्तुत किया जाता था। रानी गुफा स्थित प्रेक्षामंडप के विषय में रंगमंच-विषयक आधुनिक विद्वान एवं प्रसिद्ध इतिहासकार वराडपाण्डे का मत है कि यह आसन व्यवस्था से युक्त आच्छादित प्रेक्षामंडप है।

"...Double Storey, special courtyard in front of it. The audience used to sit in the pillared galleries of first, leaving the ground floorcells for actor to prepare themselves for the shows. On the left hand prejection of the cave theatre is a spacious throne carved out of stone, to accomodate dignitaries like the King and his family or the high priest attending the performance. The auditorium is fully covered and not open like greek amphitheatre on hill sides are."(Varad pandey. Ancient Indian & Greek theatre, p. 82)

अजंता, एलोरा की गुफाओं में प्रवचन कक्ष, सभामंडप रंगमंडप के प्राप्त संकेत

अजंता और एलोरा की गुफाएं महाराष्ट्र प्रांत में औरंगाबाद नगर के निकट हैं। अजंता गुफा और औरंगाबाद से 66 मील की दूरी पर है और एलोरा गुफा 16 मील की दूरी पर है। ये गुफाएं बौद्धकालीन हैं। इतिहासकारों का मत है कि इनका निर्माण ई० पू० 500 से ई० पू० 200 तक की अवधि में हुआ था। इन गुफाओं में प्राचीनकाल स्थापत्य वास्तुशिल्प के अनेक सुंदर उदाहरण हैं। बड़ी-बड़ी गुफाओं को निपुणता से काटकर विशाल एवं सूक्ष्म कक्ष बनाए गए हैं। बड़े कक्षों में विभिन्न कार्यक्रम धर्मावलम्बियों के समक्ष प्रस्तुत किए जाते थे। इन गुफाओं के छोटे कक्षों में बाहर से आए सामाजिकों के विश्राम का प्रबंध किया जाता था। ये सामाजिक विभिन्न उत्सवों पर उस समय, प्रवचन या धार्मिक गोष्ठी के लिए इन स्थानों पर एकत्रित होते थे। इन गुफाओं का धरातल प्राकृतिक रूप से निम्नोन्नत होने के कारण प्रेक्षक या श्रोता किसी निम्न स्थान पर बैठ सकते थे तथा कार्यक्रम किसी ऊंचे स्थान पर होता था। अजंता की गुफाओं की श्रृंखला में कई ऐसे वर्गाकार एवं आयाताकार गुफा कक्ष है, जो विभिन्न प्रकार के

कार्यक्रम के लिए प्रयुक्त होते थे। इनमें से एक 70वीं गुफा है, जो वर्गाकार है, इसमें आठ-सपाट स्तम्भ हैं। इस गुफा कक्ष को धार्मिक प्रवचन के लिए प्रयोग में लाया जाता था। वहीं निकट ही बौद्ध की मुख्य मूर्ति के पास एक अन्य गुफा-कक्ष है, जो विहार के नाम से जाना जाता है। यहां पर भी प्रवचन आदि होते थे। अजंता की गुफा में एक अन्य विशाल गुफा कक्ष है, जो आयताकार है। इसकी लम्बाई 96 फुट और चौड़ाई 44 फुट है। इसमें 26 स्तम्भ हैं। दर्शकों के लिए चौकियां तथा एक लम्बा चबूतरा है। इसकी छत विषम स्तर वाली है। इस गुफा के उक्त कक्ष के आकार को देखकर ऐसा लगता है कि यह तत्कालीन शैलगुहाकार प्रेक्षागृह का 'पूर्वरूप' है। अजंता की गुफा नम्बर एक की दीवार पर एक रंग-मंडप का दृश्य चित्रित है। इस कक्ष में भित्तिचित्रों की संयोजना सुरुचिपूर्ण है। दीवारों पर अप्सराओं तथा नर्तकियों के चित्र हैं, एक ओर राजा को अपने रंग-मंडप में विदूषक और रानियों के साथ बैठे दर्शाया गया है। इस रंगमंडप में नृत्य एवं संगीत के दृश्य चित्रित हैं। इस रंगमंडप का गुफा-कक्ष उस बाह्यमंडप की ओर इंगित करता है, जिसका वर्णन संस्कृत काव्यकार बाण ने अपनी कृति 'हर्षचरित' में 'बाह्यस्थान मंडप' कहकर किया है। सम्भवतः यह गुफा-स्थित विशाल कक्ष नगर से दूर प्रेक्षागृह की भांति था, जो सार्वजनिक प्रयोग के लिए था। वस्तुतः यह तत्कालीन सभा-कक्ष है।

एलोरा की गुफाओं में जगन्नाथ सभा, बाली गुफा में नीचे के तल पर है तथा ऊपर के तल पर नवरंग कक्ष है, जो अलंकृत है। इसमें 12 सुसज्जित स्तम्भ हैं और इन पर विभिन्न मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

एलोरा का 'नवरंग' नामक यह विशाल प्राचीन सभामंडप है। इसके मध्य में बेदी है, इसके पास ही बौद्धकाल में प्रवचन एवं धार्मिक गोष्ठी के कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया जाता था। इसके चारों ओर और कुछ निचले स्थान पर सामाजिक बैठते थे। इसी प्रकार अजंता, एलोरा की गुफाओं पर कई ऐसे अन्य कक्ष भी हैं, जो आकार में छोटे हैं, जिसमें सीमित संख्या में प्रेक्षक बैठते थे। इन सभी कक्षों की छत उल्टे 'U' के आकार (चैत्याकारों) वाली है। अतः इसके अंदर ध्वनिविस्तरण का प्राकृतिक गुण विद्यमान होने से ये प्रेक्षागृह के रूप में प्रयुक्त होते थे।

इसके अतिरिक्त बिहार प्रांत के बाराबार नामक पहाड़ियों में प्राप्त लोमेश ऋषि की विशाल गुफा प्राचीनकालीन गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप का संकेत देती है।

यह गुफा ई० पूर्व तीसरी सदी की है। इसमें लोमेश ऋषि अनेक अवसरों पर अन्य ऋषियों, शिष्यों एवं सामाजिकों के समक्ष धर्म ज्ञानवर्द्धन हेतु गोष्ठियों का आयोजन करते थे। कभी-कभी इस स्थल पर किन्हीं पौराणिक कथाओं पर नाटकों का आयोजन भी किया जाता था। यह गुफा अत्यंत विशाल है इसमें भित्तिचित्र आदि से अलंकरण नहीं हुआ है। यह सामान्य आयताकार कक्ष है। एक ओर ऊंची भूमि पर कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे।

मैसूर की कृष्णागिरी पहाड़ियों पर जिजी-स्थल पर अनेक मंदिर है। प्राचीन-काल में इन मंदिरों में किन्हीं धार्मिक उत्सवों पर मेला लगता था। इन मेलों में सम्मिलित होने के लिए नगरों, कस्बों एवं गांव से भिन्न-भिन्न अभिरुचियों वाले सामाजिक आते थे। इनकी रुचियों का ध्यान रखते हुए प्रेक्षागृहों के अनेक स्वरूप जैसे प्रेक्षामंडप, सभामंडप, व्यायामशाला आदि सार्वजनिक भवन पहाड़ियों को काटकर समृद्ध व्यक्तियों एवं राजाओं के द्वारा सातवीं शती में बनाए गए थे। प्राचीन प्रेक्षागृह का संकेत देने वाले ये भवन कालांतर में ध्वंस हो गए। अब पुनः इसी स्थान पर नवनिर्माण से प्रेक्षागृह बनाए गए। व्यायामशाला के लिए आयताकार भवन जिमनेजियम कक्ष प्रदर्शित है।

इनके अतिरिक्त भारत में ईसा पूर्व एवं ईसा पश्चात् की कुछ ऐसी गुफाएं भी हैं, जिनमें प्राचीन प्रेक्षामंडपों के अल्पसंकेत मिलते हैं। इनका विस्तृत वर्णन न मिलने से इनके विकसित रूप का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। जेम्स फर्ग्यूसन ने गुफा-स्थित ऐसे मंडपों को प्रवचन, गोष्ठी संगीत आदि के लिए प्रयुक्त क्रमशः 'विहार', 'शाला', या 'सभा' कक्ष की संज्ञा दी है। ये गुफा-स्थित प्रेक्षामडप प्रायः बौद्ध एवं जैन धर्म से अनुप्रमाणित हैं। गुफा-स्थित ऐसे कतिपय सभामंडपों का वर्णन निम्नलिखित है।

भारत में काठियावाड़ की तलज (तलगिरी) पहाड़ियों की गुफाओं में 'एमल' मंडप मिलता है। इस मंडप की लम्बाई-चौड़ाई 75 × 67 फुट है। इस आयताकार मंडप की छत 17 फुट ऊंची है। इसमें अष्टकोण वाले चार ऊंचे स्तम्भ हैं, जो चित्रों से अलंकृत है। यह अंदर से 'हार्स शू' की आकृति का है। इसमें सामाजिकों के बैठने की व्यवस्था पत्थरों की चौकियों पर की जाती थी। यहां कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने वाला स्थल ऊंचा नहीं है। इस सभामंडप के विषय में ऐसा माना जाता है कि यह अशोक से भी पूर्व का है, जो समय अंतराल से अब ध्वंस हो गया है।

दक्षिण कोंकण की 'कूड' (KUDA) पहाड़ियों की गुफाओं की शृंखला में एक गुफा है, जिसके आगे लम्बा बरामदा है तथा उसके बाद की गुफा में मंदिर है। इस गुफा के समक्ष ही एक अन्य गुफा है, जो वर्गाकार है। इसकी चारों भुजाएं बराबर परिमाण की हैं। एक भुजा का परिमाण 35 फुट है। यह एक सामान्य कक्ष है, जिसमें उस समय प्रवचन या गोष्ठी, कीर्तन आदि के कार्यक्रम होते रहते थे। इसी प्रकार कोंकण में बैंकाट नदी के पास महैर की पहाड़ियों में गुफा-स्थित मंदिर के निकट ही एक गुफा में विशाल कक्ष है, जिसकी लम्बाई चौड़ाई 62 × 35 फुट है। इसकी छत 10 फुट ऊंची है, जो गुफा की दोनों ओर की दीवारों पर ढलुवां झुकी हुई है। इसमें दीवारों की ओर बैंठने की लम्बी-लम्बी चौकियां स्थित हैं, जो पत्थरों से बनी हैं। कक्ष में तीन दरवाजे और दो खिड़कियां हैं। इसके बराबर के एक और कक्ष में भगवान बुद्ध की मूर्ति है। इस कक्ष के विषय में फर्ग्यूसन का मत है कि यह 'विहार' था, जिसमें बुद्ध के प्रवचन होते थे। यहां बौद्ध मत के अनुयायी तथा सामान्य जनता धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्रित होती थी। ये गुफाएं बौद्धकालीन हैं। इस गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप में संगीत, भजन एवं नाटकों का अभिनय होता था। इसमें 'दशावतार काल' जैसे नाटकों को अभिनीत किया जाता रहा था। इस मंडप को 'शाला' भी कहा जाता था।

मालवा अंचल में मंदसौर जिले के पास धर्म राजशेखर की पर्वत शृंखलाओं की पंक्तियां हैं। इन शृंखलाओं में अनेक गुफाएं हैं, जिनकी संख्या 170 से भी अधिक है। छठी शताब्दी में यहां धर्मनाथ मंदिर का निर्माण किया गया था। द्रविड़ वास्तुशैली पर आधारित इसकी शिल्पकारी अजंता-एलोरा से साम्यता रखती है। यहीं पर निकट ही कचेरी नामक गुफा में एक चैत्य है। यह वर्गाकार है, जिसकी एक भुजा का परिमाण 24 फुट है। यह गुफा बौद्धकालीन सभागृह है। नासिक के निकट की गुफाओं में भी गुफा-स्थित नाट्यमंडप के संकेत मिलते हैं। ये प्रेक्षामंडप एक सामान्य कक्ष की भांति हैं। उनमें से किन्हीं गुफा-स्थित मंडपों के बीच में बेदी बनी हुई है। उसके चारों ओर प्रेक्षकों के बैठने का स्थान है, तथा कुछ गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप में दो धरातल हैं, जिसमें ऊंचे धरातल पर कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे तथा नीचे धरातल पर प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था थी। रंगमंच स्थल के पीछे छोटे-छोटे दो गुफा कक्ष ग्रीन रूम की भांति प्रयोग किए जाते थे।

इन शैलगुहा-स्थित प्राचीन प्रेक्षागृहों के परिवेक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा से पूर्व, विशेषतः बौद्ध एवं जैन धर्म के समय, प्रेक्षागृहों का अस्तित्व प्राकृतिक

रूप से निर्मित गुफाओं में अधिकांशत: था । ये प्रक्षास्थल सार्वजनिक प्रयोग के लिए थे । ऐसे प्रेक्षागृह किन्हीं वास्तुशिल्पशास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए निर्मित नहीं किए गए थे । उनमें स्थानीय निर्माण सामग्री जैसे पत्थर तथा लकड़ी का प्रयोग ही अधिकांशत: किया जाता था । गुफाओं की दीवारों पर पत्थरों को विभिन्न मूर्तियों में तराशा जाता था । ये सुविनियोजित प्रेक्षागृह नहीं थे । ये गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप नगर के कोलाहल से दूर निकट ही किन्हीं पहाड़ियों की गुफाओं में स्थित थे । ऐसा तब इस कारण से होता रहा होगा, क्योंकि कौटिल्य ने विनियोजित प्रेक्षागृहों का निर्माण नगरों में निषिद्ध कर दिया था । इसीलिए ये गुफा-स्थित प्रेक्षागृह नगर से बाहर बने थे । ये गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप प्राय: दो प्रकार के मिलते हैं । प्रथम वे जिनमें किन्हीं धर्म विशेष के धार्मिक प्रवचन, गोष्ठी, यज्ञ, जैसे कार्यक्रमों का आयोजन होता था । इन्हें चैत्य, विहार, शाला, सभामंडप आदि से जाना जाता था । ये सामान्य कक्ष की भांति थे । इनके मध्य में बेदीं होती थी, जिसके चारों ओर श्रोता बैठते थे । दूसरे प्रकार के गुफा-स्थित वे प्रेक्षा-मंडप हैं, जिनमें संगीत, नृत्य, नाटक आदि जैसे मनोरंजन के कार्यक्रमों को रसिक रागों के लिए प्रस्तुत किया जाता था । ये गुफा-स्थित प्रेक्षामंडप अपेक्षाकृत विभिन्न शैली के होते थे । इनके द्वारों पर पतले और सुंदर कपड़े से बनी यवनिकाएं टांगी जाती थीं । इनकी दीवारों एवं छतों पर पशु-पक्षियों के चित्रों के अतिरिक्त आत्मभोगज चित्रों को उत्कीर्ण किया जाता था । कुछ विशाल गुफा-स्थित प्रेक्षा-मंडपों में देवदासियों एवं अप्सराओं की मूर्तियों से उत्कीर्ण स्तम्भों को स्थापित किया जाता था । इनमें कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाला स्थल अपेक्षाकृत ऊंचा होता था । प्राय: ऐसे मंडप आयताकार होते थे ।

उपर्युक्त गुफाओं एवं पहाड़ियों में स्थित प्रेक्षागृहों के अस्तित्व प्राप्त करने के पश्चात यहां कुछ ऐसे प्रेक्षागृहों के विषय में उल्लेख किया जा रहा है, जिनके संकेत पुरातत्वेत्ताओं एवं इतिहासकारों ने प्राचीन अभिलेख, शिलालेख एवं चित्रों में प्राप्त किए हैं । प्राचीन प्रेक्षागृहों के अस्तित्व के ऐसे विभिन्न स्वरूप निम्न-लिखित हैं ।

मथुरा के पास कांकली टीले से नृत्य के दृश्य का एक ऐसा चित्र, जो मोटे ऊर्ना कपड़े पर चित्रित है, प्राप्त हुआ है । यह चित्र आजकल लखनऊ संग्रहालय में रखा है । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल इस चित्रकला के नमूने को ई० पू० 200 का बताते हैं । इस तैलीय रंगीन चित्रों में जैन आदि पुराण की एक कथा पर

आधारित एक दृश्य अंकित है, जिसमें नीलांजना नामक अप्सरा रंगमंडप में नृत्य कर रही है, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रेक्षक की भांति उस नृत्य दृश्य को देख रहे हैं। इसमें नृत्यमंडप या रंगमंडप आयताकार है। यह तीन ओर से खुला है। पीछे से यह एक दीवार से बंद है। इस चित्र में सामने की ओर दो स्तम्भ दर्शाए गए हैं तथा पीछे की ओर एक स्तम्भ को स्थित दिखाया गया है। इन तीनों स्तम्भों की संरचना में साम्यता है। ये स्तम्भ पतले-लम्बे तथा गोल हैं। इनका ऊपर का भाग अंग्रेजी के 'ई' की आकृति जैसा है, जो छत को सहारा देने के लिए नीचे की अपेक्षा ऊपर से चौड़े हैं। इस रंगमंडप की छत पर तिकोने फ्रेम में शहतीरों को लगाया गया है, जिसे अंग्रेजी 'एल' की आकृति वाली टाइलों से पाटा गया है। चित्र में प्रदर्शित रंगमंडप के रंगमंच स्थल पर नर्तकी के अतिरिक्त पांच अन्य व्यक्ति चित्रित हैं, जो विभिन्न वाद्य यंत्रों को अपने हाथ में लिए हुए हैं। इस रंगमंडप में कुछ प्रेक्षक भी प्रेक्षक-स्थल पर बैठे दर्शाए गए हैं। इनमें से कुछ प्रेक्षक प्रेक्षक-स्थल की प्रथम पंक्ति में बैठे हुए हैं तथा कुछ पीछे की पंक्ति में खड़े हुए हैं। यहां प्रेक्षक-स्थल एवं रंगमंच को एक ही स्तर वाले धरातल पर स्थित दर्शाया गया है।

दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में राजा भोज की रंगशाला की जानकारी देने वाला एक शिलालेख इतिहासकारों एवं पुरातत्वेत्ताओं के द्वारा पश्चिमी मऊ के 'धार' क्षेत्र में पाया गया है। ये शिलालेख जिन पर संस्कृत के एक प्राचीन नाटक 'पारिजात मंजरी' का सम्पूर्ण नाटक अंकित है, काले पत्थर से बने हुए हैं। ये पत्थर आजकल वहीं पर स्थित 'काला मौला मस्जिद' की मेहराब में जुड़े हुए हैं। इस शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि जहां से ये पत्थर मिले हैं, वहां पर भोज की रंगशाला थी, जो कालांतर में एक 'मस्जिद' के भवन के रूप में परिवर्तित हो गई। इस रंगशाला से यह अनुमानित है कि राजा भोज ने अपने लिए इस रंगशाला को बनवाया था, जिसमें ललित कलाओं का प्रदर्शन किया जाता था।

पीछे हम बता चुके हैं कि रासलीला के लिए प्रयुक्त होने वाला स्थान या भवन भी प्रेक्षास्थल का एक स्वरूप है, अतएव उस स्थल से सम्बंधित कुछ ऐतिहासिक स्रोतों का यहां संकेत मात्र देना अपेक्षित है। इतिहासकारों का मत है कि मानवसुलभ भावनाओं को नृत्य भंगिमाओं के द्वारा अभिव्यक्त करने की परम्परा 8000 ई० पू० से भी प्राचीन है, प्राचीन गुफाओं एवं चट्टानों के रेखाचित्रों से इस बात के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। भोपाल की पहाड़ियों में 'हास्पिटल हिल केव' में नृत्य करते हुए व्यक्ति समूहों के दृश्य को दीवारों पर खड़िया तथा कोयले से

दर्शाया गया है। इसी प्रकार शिमला की पहाड़ियों पर एक प्राचीन चित्र चित्रित है। इस चित्र में नृत्य करते हुए आठ नर्तकों के गोल घेरे के अंदर एक नर्तक को नृत्य करते हुए दर्शाया गया है। इतिहासकारों का मत है कि इन पहाड़ियों में कभी रासलीला मंडप रहा होगा या वहीं किसी स्थान विशेष पर ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते रहे होंगे। उन कार्यक्रमों के दृश्यों को चित्रकार ने गुफाओं की भित्तियों पर चित्रित कर दिया होगा।

यहां कहने का तात्पर्य यह है कि गुफाओं की भित्तियों एवं स्तम्भों पर चित्रित चित्रों, उत्कीर्ण मूर्तियों एवं जीर्ण-शीर्ण अव्यवस्थित प्रेक्षामंडपों के प्रमाणों से यह सरलता से जाना जा सकता है कि प्राचीनकाल में प्रेक्षागृहों का क्रमिक विकास गुफा-स्थित मंडपों से हुआ था। तत्कालीन सामाजिक कलाकार, रसिक, संत, मनीषी आदि अपनी कला, मनोरंजन एवं धर्म साधना के लिए उपर्युक्त गुफा स्थित प्रेक्षागृहों को प्रयोग में लाते थे। वहां नगर के जीवन से दूर सीमित संख्या में प्रेक्षक एकत्रित होकर, नृत्य, नाट्य, संगीत एवं धार्मिक प्रवचन आदि में लीन हो जाते थे।

उपर्युक्त गुफा एवं पहाड़ी स्थित प्रक्षागृहों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रेक्षामंडपों का वर्णन यहां अपेक्षित है, जो दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिरों से सम्बद्ध है। इन प्रेक्षामंडपों की विनियोजना से हमें प्राचीन प्रेक्षागृहों के स्वरूपों एवं उनकी परम्पराओं की सम्यक जानकारी मिलती है। दक्षिण भारत के मंदिरों से सम्बद्ध प्रेक्षामंडप, प्रायः रंगमंडप, नाट्यमंडप, नटमंदिर, कूथाम्बलम्, बलियाम्बलम् आदि नामों से जाने जाते हैं। ये नाट्यमंडप देवविग्रह के सम्मुख निर्मित किए जाते हैं। प्राचीन वास्तुशिल्प की शैली में निर्मित, ये प्रेक्षागृह आज भी अपना विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनमें से मुख्यतः कूथाम्बलम् एवं बलियाम्बलम् विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन नटमंदिरों में देवदासियां अपने आराध्य देवताओं की आराधना के लिए दर्शकों एवं भक्तों के सम्मुख संगीत, नृत्य एवं नाट्य का प्रदर्शन करती थीं। मंदिर के वार्षिकोत्सवों, धार्मिक पर्वों या ऋतुत्सवों पर रूपकों एवं उपरूपकों को आज भी इन स्थलों पर प्रस्तुत किया जाता है।

केरल के प्राचीन मंदिरों के परिसर में बने 'बलियाम्बलम्' एवं 'कूथाम्बलम्' पारम्परिक शैली पर निर्मित हैं। ये छठी शताब्दी के वास्तुग्रंथ शिल्परत्न

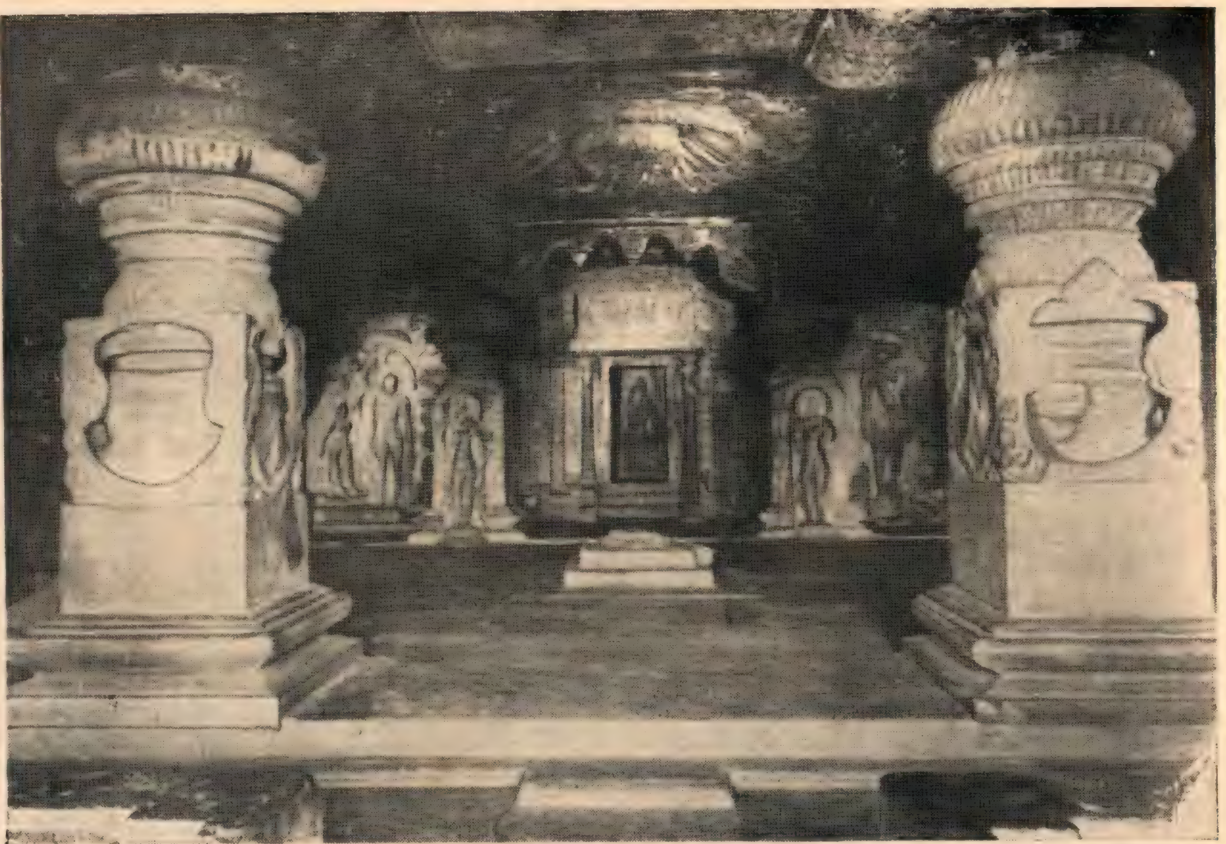
(कुमारकृत) में निर्दिष्ट पांच प्रासादों में गिने जाते हैं। ‘.लयाम्बलम [illegible] ‘कूथाम्बलम्’ केवल मंदिरों से सम्बद्ध होते हैं। ‘बलियाम्बलम्’ में रंगपीठ स्थल सामान्य धरातल से कुछ इंच ऊंचा होता है तथा प्रेक्षक-स्थल इसके आगे होता है। किन्हीं बलियाम्बलम् में दो रंगपीठ स्थल आमने-सामने होते हैं, दोनों रंगपीठ स्थलों के मध्य जो स्थान होता है, उसमें प्रेक्षक बैठकर या खड़े होकर कार्यक्रम देखते हैं। मालाबार में करीवैलर के बलियाम्बलम् की संरचना की अपनी विशेषता है। इसके व्यवस्थित रंगपीठ का चबूतरा लाल रंग के पत्थरों से निर्मित है, इसमें एक ओर अधिष्ठान मंडप है। स्टेज के पीछे कम ऊंचाई वाली दीवार है, इस दीवार से एक प्रवेश द्वार है। इस प्रवेश द्वार के बाद नेपथ्य गृह हैं, जहां ‘चाक्यार’ (पात्र) अपना आहार्य का कार्य करते हैं। इस बलियाम्बलम् में ब्राह्मणों, स्त्रियों तथा अन्य वर्ग के प्रेक्षकों के बैठने के लिए भिन्न-भिन्न स्थल हैं। प्रेक्षक-स्थल के एक कोने पर छोटा-सा कक्ष है। इसमें केवल दस स्तम्भ हैं। खिड़कियों की संख्या न्यून है। प्रवेश द्वार केवल एक है। आयताकार ‘बलियाम्बलम्’ में पीतल, तांबा एवं लकड़ी से शिल्पवास्तु का कार्य किया गया है। इसमें बांसों का प्रयोग छत को पाटने तथा स्थान-विशेष का विभाजन करने के लिए किया गया है। बलियाम्बलम् के रंग-मंडप कोट्टायाम, अर्नाकुलम, एलैप्पी, केनूर आदि नगरों में मंदिरों से सम्बद्ध हैं।

प्राचीन प्रेक्षागृहों की शृंखला में दक्षिण भारत के मंदिरों के प्रांगण में कूथाम्बलम् अपना विशेष महत्व रखते हैं। ‘कूथाम्बलम्’ रंगमंडप के रूप के प्राचीन प्रेक्षागृह का यह पारम्परिक स्वरूप भरत-निर्दिष्ट प्रेक्षागृह-निर्माण सिद्धांतों पर आधारित है। केरल प्रांत के मंदिरों से सम्बद्ध पेरूमनन, ऋतुकुलम्, कित्तन्गुर, पलयन्नूर, तिरुवरप्पू, गुरुवायून बैडाकुंठम् आदि के कूथाम्बलम् मुख्य हैं। त्रिचूर के बैडाकुंठ देव मंदिर के उत्तर-पश्चिम में स्थिति कूथाम्बलम् का रंगपीठ-स्थल मंदिर की प्रमुख मूर्ति के सम्मुख है। इसमें सभी पात्र देवमूर्ति की ओर मुंह करके अभिनय या नृत्य करते हैं। कूथाम्बलम् में ‘कुट्टीअट्म’ नाट्य-शैली को प्रस्तुत किया जाता है। दक्षिण भारत की यह ऐसी नाट्य-शैली है, जिसमें संगीत, नृत्य और अभिनय (नाट्य) के साथ विभिन्न रागों पर आधारित मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। कूथाम्बलम् के रंगमंडप में भरत-निर्दिष्ट ‘मतवारणी’ की व्यवस्था है। बैडाकुंठ कूथाम्बलम् की छत लकड़ी से बनी हुई है तथा यह स्तूप के आकार की है।

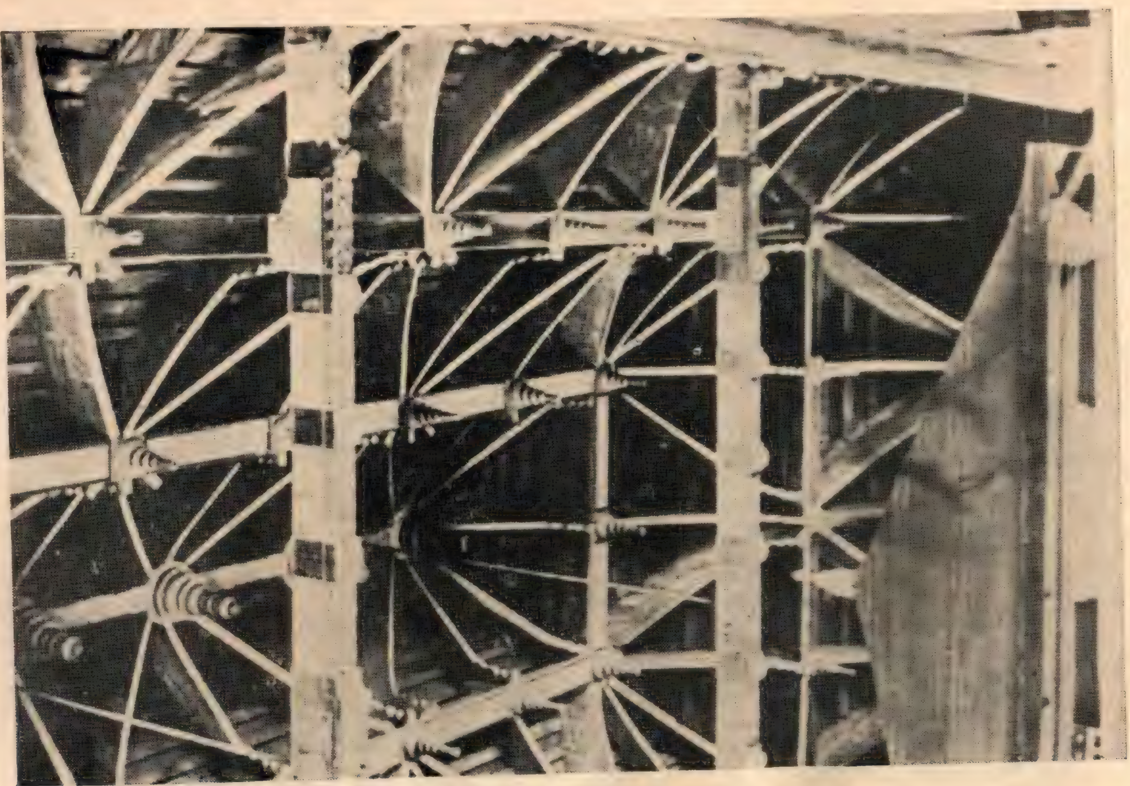
कूथाम्बलम् प्रेक्षागृह आयताकार है। इसका स्टेज एवं प्रेक्षक-स्थल वर्गाकार है। इस प्रेक्षागृह की छत की एक मुख्य विशेषता है कि यह मध्य में ऊपर की ओर



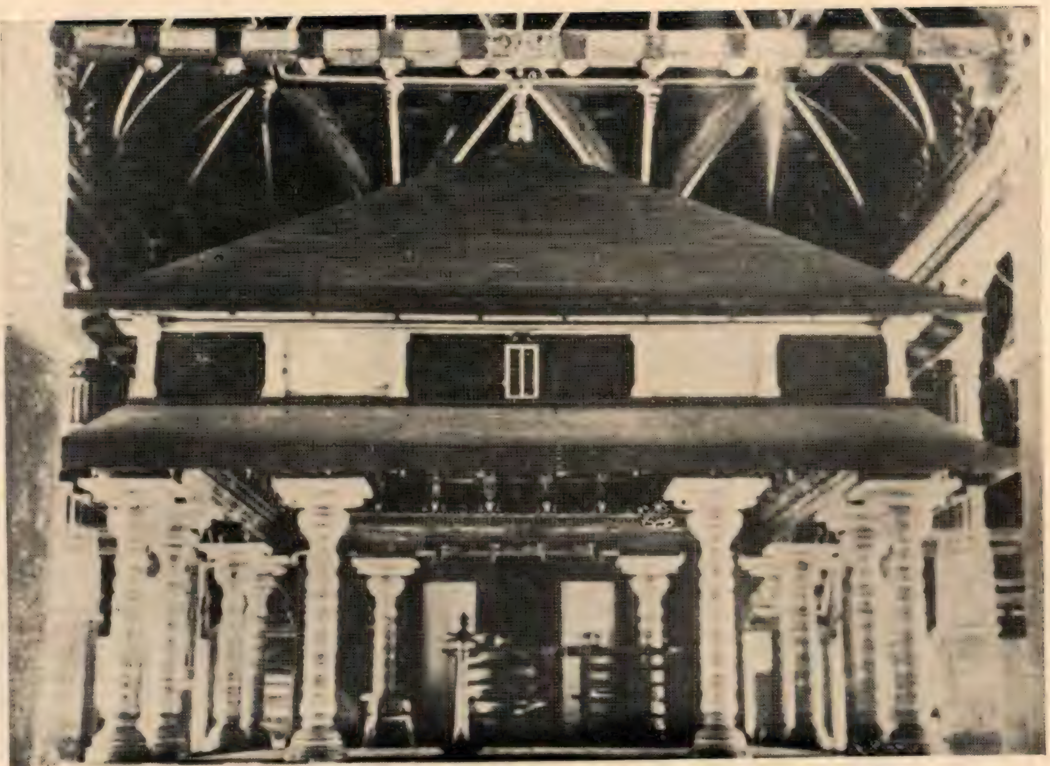
लोमश ऋषि की गुफा स्थित सभामंडप (पृ० सं० 32)



एलोरा की गुफा में सभामंडप (पृ० सं० 31)



कूथाम्बलम प्रेक्षागृह की छत (पृ० सं० 38)



कूथाम्बलम का प्रेक्षागृह (पृ० सं० 38)



नागार्जुन कोंडा (पृ० सं० 26)



असम में जयसागर का रंगघर (पृ० सं० 43)

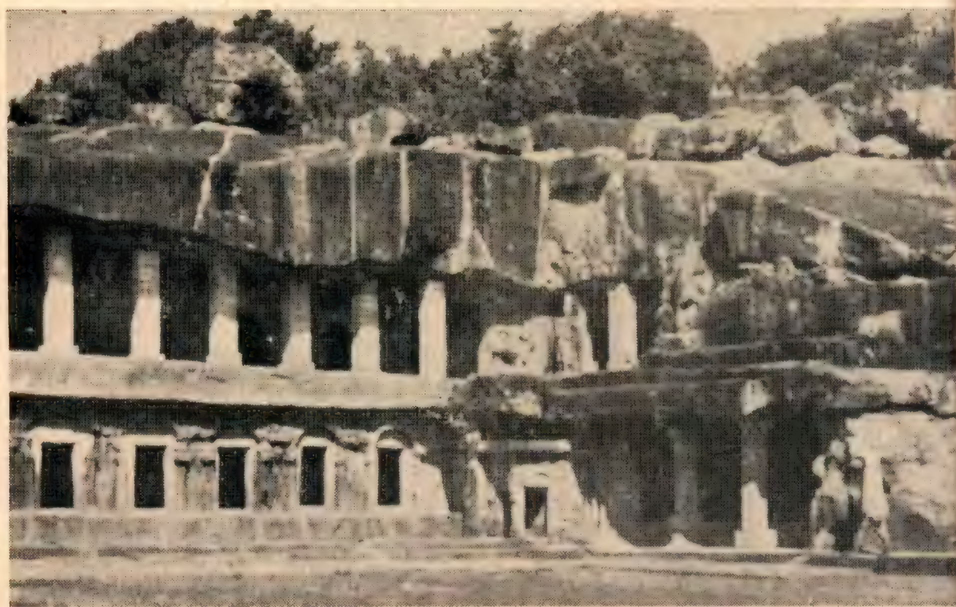


कल्याण मंडप (जिजी) (पृ० सं० 33)



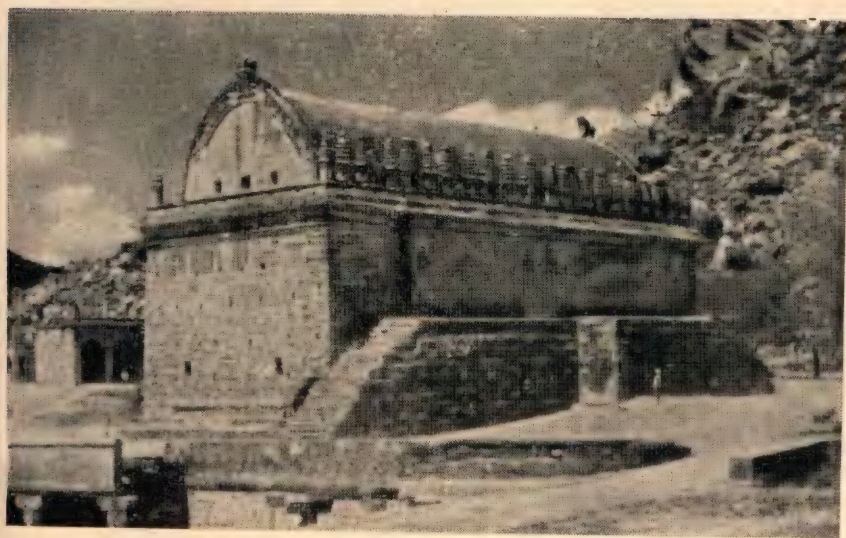
नट मंदिर कोणार्क (पृ० सं० 41)

रानी गुम्फा का रंगमंडप (पृ० सं० 29)





कृष्णगिरि पहाड़ियों पर स्थित प्रेक्षागृह का बाह्य स्वरूप (पृ० सं० 33)



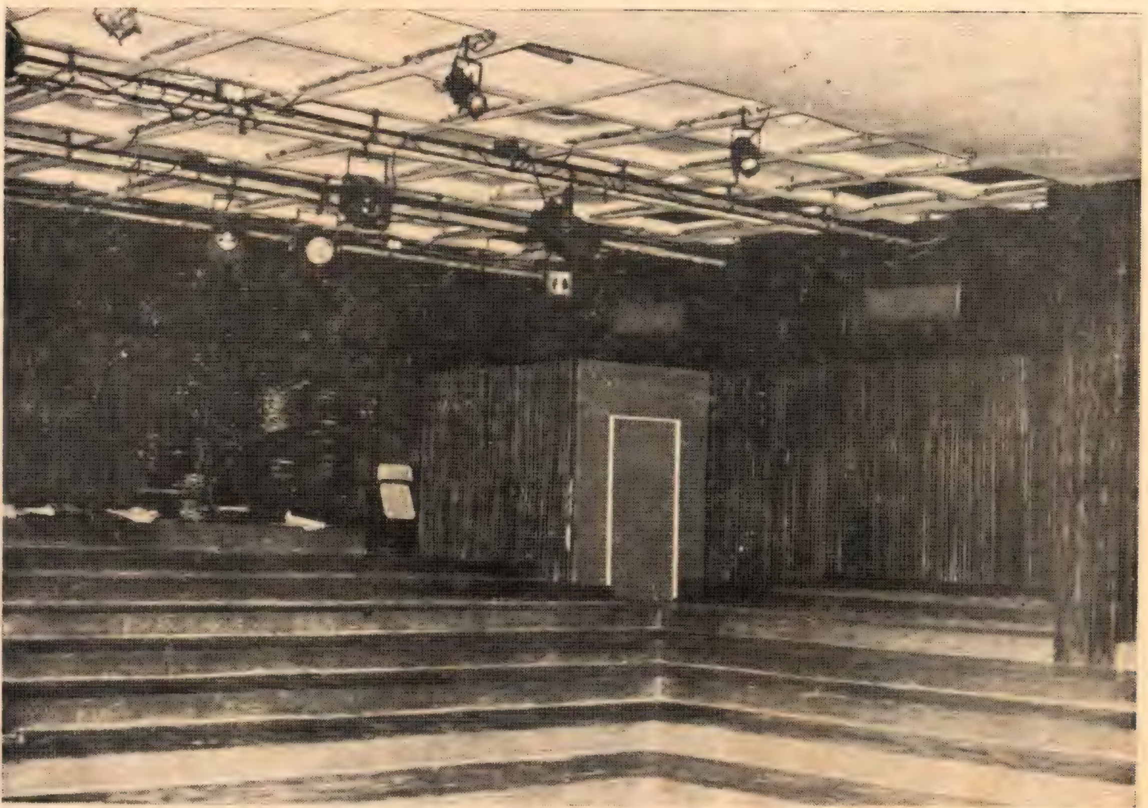
जिमनेजियम कक्ष (जिंजी) (पृ० सं० 33)



मुढेरा के सूर्य मन्दिर से सम्बद्ध सभामंडप के अंदर का चित्र
(पृ० सं० 42)



कृष्णगिरी की पहाड़ियों पर स्थित प्रेक्षागृह के अंदर का चित्र
(पृ० सं० 33)



भारत भवन की अंतरंग रंगशाला का प्रेक्षक-स्थल (पृ० सं० 75)

उठी हुई तथा पार्श्व में 45 डिग्री के कोण पर झुकी हुई और ढालू है। छतों के अंतिम छोरों पर सर्पशीर्ष की आकृति बनी हुई है। छत को टिकाने के लिए दोनों ओर लम्बाई में 15-15 धारणीधारण (बीम) लगे हुए हैं तथा चौड़ाई में दोनों ओर 11-11 धारणीधारण हैं। छह लकड़ियों के फ्रेम से सम्पूर्ण छत को पाटा गया है। इन छह लकड़ियों के फ्रेम को प्राचीन वास्तु-शैली में षड्दारुक तथा आज की वास्तु-शैली में 'ट्यूबलर स्ट्रक्चर' कहते हैं। इस प्रेक्षामंडप की छत को ऊपर से ताम्र पट्टी से सजाया गया है। यह सम्पूर्ण छत 'पूर्ण घट' के प्रतीक से अलंकृत है। इस पारम्परिक प्रेक्षामंडप में प्रेक्षक-स्थल समतल भूमि पर है, जो रंगपीठ (स्टेज) से नीची है। इस स्थल पर दोनों ओर बड़े तथा लम्बे स्तम्भ हैं और पीछे की ओर स्तम्भ क्रमशः छोटे होते चले गए हैं। स्तम्भ लकड़ी और पत्थर के हैं। लकड़ी के स्तम्भों पर सुंदर-सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पत्थरों के स्तम्भों पर बड़ी कुशलता से कारीगरी की गई है। इन स्तम्भों के ऊपर के भाग को कुम्भाकृति में तराशा गया है। इसका रंगपीठ प्रेक्षक-स्थल के धरातल से साढ़े तीन फुट ऊंचा है। यह लकड़ी से निर्मित है। इसमें छोटे-छोटे छिद्र हैं। इन छिद्रों को छोटी-छोटी ईंट की रोड़ियों से भरकर गोबर और मिट्टी से पाटा गया है। रंगपीठ के पीछे स्थल पर नेपथ्य है, जो रंगपीठ से नीचा है। नेपथ्य स्थल पर दो द्वार हैं। इन दो द्वारों के मध्य ताम्र के दो ड्रम नगाड़े बजाने के लिए रखे हैं। इसके स्टेज को आवश्यकतानुसार दोनों ओर से ऊंचा कर दिया जाता है। 'कूथाम्बलम्' प्रेक्षागृह में आज भी अनेक दीपकों वाले बड़े दीपक स्तम्भों के द्वारा कार्यक्रम के समय प्रकाश करने की परम्परा है। वस्तुतः दसवीं शताब्दी में निर्मित, कूथाम्बलम् पारम्परिक प्रेक्षागृह का एक अनुपम प्रमाण है।

मंदिरों से सम्बद्ध कुछ रंगमंडप

केरल प्रदेश के तृशिशबपेरूर के मंदिर में मध्यकालीन रंगमंडप का सुंदर नमूना प्राप्त होता है। यह रंगमंडप श्री कोबिल देव प्रतिष्ठा के पश्चिम में स्थित है। उत्तर दक्षिण में प्रवेश द्वार बने हैं। एक ओर पत्थर का चबूतरा है, जो सामान्य धरातल से लगभग चार फुट ऊंचा है। ऊपर की छत लकड़ी की निर्मित है। दक्षिण द्वार से अंदर प्रवेश करने पर विशाल बेदी दिखाई देती है। बेदी के पास के स्थल को तीन भागों में विभक्त किया गया है। इसके मध्य का भाग अपेक्षाकृत ऊंचा है। पश्चिम का भाग नेपथ्य है, वह दीवार से पृथक है। पूर्व दिशा में दर्शकों के बैठने का स्थान है। सम्पूर्ण कक्ष की छत तथा स्तम्भों आदि का शिल्प

अत्यंत सुंदर है। मंदिरों से सम्बद्ध ऐसे रंगमंडपों पर दक्षिण भारतीय शैली के नृत्य एवं नाट्य प्रयोग होते रहे हैं। इन रंगमंडपों को प्रायः 'कलित्तट्टु' (खेल का मंच) भी कहा जाता है। इस कक्ष में, प्राचीन काल में प्रकाश के लिए एक बड़ा दीपक तथा अन्य कुछ छोटे दीपकों को प्रज्ज्वलित किया जाता था। आज प्रकाश-व्यवस्था के लिए विद्युत की सुविधा प्राप्त होने पर भी प्राचीन परम्परा को जीवंत बनाए रखने के लिए दीपकों को ही प्रज्वलित किया जाता है।

तमिल भाषा के एक साहित्यकार तिरुवल्लुवर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिरुक्कुरल, में 'कुताद जई' नामक प्राचीन नाट्यशाला का वर्णन किया है। देवमंदिरों से सम्बद्ध एक विशाल कक्ष को नाट्यशाला के रूप में प्रयोग किया जाता था। इस कक्ष में देवदासियों द्वारा विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर संगीत नृत्य और नाट्य सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे। राजभवनों से सम्बद्ध रंग भवन को 'कुतुप्पलि' कहते थे। उक्त साहित्यकार ने ग्रंथ में लिखा है कि रंगमंडपों का माप-परिमाण मुख्य भवन जैसे मंदिर या राज भवन के माप परिमाण के अनुपात में होता था।

तमिलनाडु के ऐतिहासिक नगर मदुरै में, राजा थिरूमल नाइक द्वारा 1634 ई० में, राज भवन से सम्बद्ध रंगविलास नामक एक विशाल कक्ष निर्मित है। इस कक्ष की लम्बाई 135 फुट तथा चौड़ाई 68 फुट है। यह आयताकार कक्ष है, जिसकी छत का मध्य भाग ऊंचा है। इस कक्ष का धरातल द्वितल वाला है। इसके मध्य में धरातल नीचा है। इस धरातल पर सम्भवतः कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते होंगे। दीवारों से लगे हुए स्तम्भों पर सुंदर शिल्पकारी की गई है। उन पर पशु-पक्षी एवं नर्तकी स्त्रियों के चित्र अंकित हैं। छत के ढालू स्थानों पर सुंदर-सुंदर चित्रों को उत्कीर्ण किया हुआ है। इस 'रंगविलास' में राजा धार्मिक पर्वों, राजकीय पर्वों, विजयोत्सव आदि के अवसरों पर विभिन्न प्रकार के रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत करवाते थे। तमिल प्रदेश की नाट्य, नृत्य कला की परम्परा जितनी प्राचीन है उतनी ही प्राचीन रंगमंडप निर्माण की कला भी है। फलस्वरूप दक्षिण भारत के देव तथा राजभवनों से सम्बद्ध नाट्य मंदिर या रंगमंडप आदि अपने विकसित स्वरूप में प्राप्त होते हैं। देवदासियों के अपने प्रेक्षागृह भी होते थे। कन्याकुमारी से कुछ दूरी पर एक देवदासी ने सुचिन्दरम् देव-भवन में एक नाट्यशाला का निर्माण 1750 में कराया था। यह नाट्यशाला प्राचीन प्रेक्षागृहों की वास्तुशिल्प-कला की परम्परा का निर्वाह आज भी कर रही है। यद्यपि इसका

स्थापत्य जीर्ण-शीर्ण हो गया है तथापि ऊंची छत, विषम धरातल तथा सुंदर चित्रों से सुसज्जित स्तम्भों से यह अपनी उत्कर्षता की ओर संकेत करती है। इन्हीं स्तम्भों पर कुशल शिल्पकारिता से तराशे हुए नृत्य करती हुई देवदासियों के मूर्त्ति चित्रों से यह जान पड़ता है कि प्राचीन समय में धार्मिक एवं सांस्कृतिक समारोहों में देवदासियों की विभिन्न कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

तमिलनाडु में चिदम्बरम् एवं मदुरै के प्राचीन मंदिरों से सम्बद्ध रंगमंडपों की अपनी विशेषता है। ये अनेक अलंकृत स्तम्भों से युक्त विशाल कक्ष हैं, जिनमें जनसमूह एकत्रित होकर धार्मिक एवं राज्य-सम्बंधी उत्सवों को मनाता था। चिदम्बरम् के नटराज मंदिर से सम्बद्ध ऐसे कुछ कक्ष हैं, जो देवसभा, नृत्यसभा, राजसभा के नाम से जाने जाते हैं। ये मंडप चोलवंशी एवं पांड्यावंशी राजाओं द्वारा बनाए हुए कहे जाते हैं। 'देवसभा' नामक कक्ष में राजा, शासन के कर्मचारी एवं नगर के प्रमुख जनगोष्ठी या संगीत का आनंद लेते थे। नृत्य सभा को आजकल 'नट मंदिर' के नाम से जाना जाता है। यह कक्ष 'नटराज की मूर्ति' के समक्ष है। नृत्यसभा में अनेक अलंकृत बड़े एवं ऊंचे स्तम्भ हैं। इस कक्ष में देवदासियां देवमूर्ति के समक्ष धार्मिक उत्सव पर देवनृत्य किया करती थीं। इस कक्ष में पत्थरों से बने स्तम्भों को किसी छड़ी से घिसने पर विभिन्न वाद्यों की ध्वनि तरंगें निकलती हैं। 'राजा सभा' नामक एक अन्य विशाल कक्ष में प्राचीनकाल में राजा 'विजयोत्सव' को धूमधाम से मनाते थे। इस कक्ष की लम्बाई-चौड़ाई 103 × 58 मीटर है। इसमें एक हजार स्तम्भ स्थापित हैं। इन स्तम्भों पर 'भरतनाट्यम्' नृत्य-शैली की 108 मुद्राओं को तत्कालीन कुशल मूत्तिकारों ने बड़े कौशल से तराशा है। मंदिर से सम्बद्ध एक अन्य विशाल कक्ष मदुरै के मीनाक्षी मंदिर में इसी प्रकार निर्मित है। इस कक्ष की लम्बाई-चौड़ाई 250 × 240 फुट है। इसकी छत की ऊंचाई मध्य से 40 फुट तथा पार्श्व की दीवारों के ऊपर 35 फुट है। इस कक्ष में 985 ऊंचे स्तम्भ हैं, जिनमें देव मूर्तियों के साथ कुछ अप्सराओं के चित्र भी खुदे हुए हैं। इन स्तम्भों से संगीत एवं वाद्ययंत्रों की ध्वनि जैसी ध्वनि-तरंगें सुनाई देती हैं। आजकल इस कक्ष में म्यूजियम बनाया हुआ है।

उड़ीसा एवं गुजरात के प्राचीन सूर्यमंदिरों से सम्बद्ध नटमंदिर एवं सभामंडप प्राचीन प्रेक्षागृहों के प्रतिरूप हैं। भुवनेश्वर में कोणार्क सूर्यमंदिर ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। इस मंदिर के परिसर में ध्वज एवं अरुण स्तम्भ के

पास एक ऊंचा चबूतरा है। इस चबूतरे पर छत नहीं है। इस चबूतरे पर अनेक स्तम्भ हैं, जिन पर देवी-देवताओं, नर्तकियों एवं वाद्ययंत्र के वादकों के चित्र उत्कीर्ण हैं। इस नटमंदिर पर भी छत नहीं है। यह वृत्ताकार चबूतरा है, चबूतरे से नीचे जाने के लिए अर्द्ध गोलाकार में सीढ़ियां बनी हुई हैं। इस चबूतरे को रंगपीठ (स्टेज) कहा जाता है, यहां पर नर्तकियां प्रातः काल एवं संध्याकाल में अपना नृत्य प्रस्तुत करती थीं। इस चबूतरे के चारों ओर खुला स्थान है, जहां दर्शक या भक्तगण सूर्योपासना के पश्चात् कार्यक्रम देखते थे। चबूतरे पर स्थित स्तम्भों एवं भित्ति पर मूर्ति-शिल्प का कार्य निपुणता के साथ किया गया है। इसी प्रकार गुजरात के मुढेरा स्थान पर एक अन्य सूर्यमंदिर है, जिसका निर्माण काल 1026 ई० है। इस मंदिर के परिसर में बना 'सभामंडप' वृत्ताकार है। प्राचीनकाल में इस सभामंडप में नृत्य, संगीत एवं नाटक के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। इसके अंदर स्तम्भों की रचना एवं शिल्प अद्भुत एवं विशिष्ट शैली से युक्त है। स्तम्भों को सभामंडप के अंदर स्थापित किया गया है लेकिन आश्चर्य की बात है कि ये कार्यक्रम के दृश्यों में व्यवधान उत्पन्न नहीं करते। ये स्तम्भ नक्काशी से सुसज्जित हैं। इनके ऊपर वाले भागों को धनुषाकार धरणी (बीम) से परस्पर जोड़ा गया है।

प्राचीनकाल में मंदिरों के परिसर में 'कल्याण मंडप' की भी स्थापना की जाती थी। ये 'कल्याण मंडप' तंजौर के सारंगपाणि, नागेश्वर एवं त्रिवेन्द्रम में पद्मनाभ स्वामी के मंदिरों से सम्बद्ध हैं। दक्षिण आर्कोट के नगर के जिंजी क्षेत्र में कृष्णागिरी पहाड़ी पर भी प्राचीन 'कल्याण मंडप' के स्थापत्य अवशेष मिलते हैं। इन 'कल्याण मंडपों' में प्राचीनकाल के समय 'कल्याणोत्सव' एवं 'कल्याण-दोलोत्सव' नामक उत्सवों को विशेष धार्मिक परम्पराओं के साथ सम्पन्न किया जाता था। इन उत्सवों पर देवी-देव प्रतिमाओं का परस्पर विवाह कराया जाता था। जिस स्थान पर यह समारोह सम्पन्न होता था। वह स्थान 'कल्याण मंडप' के नाम से जाना जाता था। इस समारोह में जनसमूह एकत्रित होता था और इस उत्सव को देखता था। इस अवसर पर संगीत, नृत्य, नाट्य के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। ये कल्याण मंडप अनेक सुसज्जित स्तम्भों से युक्त हैं, इन पर देवी-देवताओं के चित्र उत्कीर्ण हैं। कल्याण मंडप पर छत स्थित है। बीच में रंगस्थल है तथा चारों ओर दर्शक बैठते हैं। ये 'कल्याण मंडप' प्राचीन प्रेक्षागृहों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कर्नाटक में बेलूर के चेन्नकेश्वर मंदिर में 'नवरंग मंडप' है। आयताकार इस विशाल मंडप के मध्य गोल रंगपीठ है। इस रंगपीठ के चारों ओर सुसज्जित एवं अलंकृत स्तम्भ हैं। ये स्तम्भ अष्टकोण तथा चतुष्कोण वाले हैं, जिनके नृसिंह, मोहिनी स्तम्भ आदि नाम हैं। इन पर नर्तकियों, देवदासियों तथा वाद्ययंत्रों के वादकों के चित्र उत्कीर्ण हैं। इस मंडप की छत मध्य से गुम्बद जैसी है, जिसकी ऊंचाई मध्य से 25 फुट है। यह चारों ओर से 15 फुट की ऊंचाई वाली है। इसकी छत वर्गाकार हो गई है। छत पर पशु, पक्षी, फूल, पत्तियों आदि को उत्कीर्ण किया गया है। इस मंडप के विषय में कहा जाता है कि यह प्राचीन समय का रासमंडप है। यहां पर प्रेक्षक रासमंडप के चारों ओर बैठ कर रासलीला का आनंद लेते थे। रासमंडप वाले इस नवरंग कक्ष में केवल देवदासियां ही नहीं, राज परिवार की स्त्रियां भी अपनी नृत्य-कला का प्रदर्शन करती थीं। कर्नाटक के राजा विष्णुवर्धन की पत्नी शांतला नृत्य एवं संगीत में पारंगत थी। वह बेलूर एवं हेलबिद के मंदिरों से सम्बद्ध रंगमंडपों में धार्मिकोत्सवों पर विद्वानों, विशिष्ट अतिथियों एवं नागरिकों के सम्मुख नृत्य प्रस्तुत करती थी।

असम के 'जयसागर' नगर में 1744 ईसवी में निर्मित एक दुमंजिले आयताकार 'रंगघर' का भवन मिला है। इस भवन की रचना प्राचीन प्रेक्षागृह जैसी है, किंतु इसमें मूर्ति-वास्तुशिल्प का अभाव है। प्राचीन प्रेक्षागृहों के अंदर पारम्परिक रूप से बनाए जाने वाले स्तम्भ भी नहीं है। वस्तुतः यह दक्षिण भारत में प्राप्त प्राचीन पारम्परिक प्रेक्षागृहों से नितांत भिन्न भवन है। इसमें नाटक, नृत्य, प्रवचन आदि के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। इसके अतिरिक्त प्राचीन प्रेक्षागृहों की श्रृंखला में, असम के 'नामघर' नामक सभागृह अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये 'नामघर' सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव पंथ के प्रवर्तक शंकरदेव ने धर्म प्रचार के लिए बनवाए थे। 'सात्र' नामक उनकी धार्मिक संस्था के द्वारा इन 'नामघरों' में सांस्कृतिक, धार्मिक एवं ललित कलाओं सम्बंधी कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। आज भी असम के प्रत्येक गांव में प्राचीन शैली पर बने नामघर हैं। ये 'नामघर' प्रायः आयताकार हैं। इसके एक ओर 'मणिकूट' नामक स्थान निश्चित होता है, इस स्थान पर धर्म-विशेष के इष्ट देव का सिंहासन होता है। नामघर के दूसरी ओर धर्मानुयायियों की कुटियां बनी होती हैं। इन 'नामघरों' को स्थानीय निर्माण-सामग्री से निर्मित किया जाता है। बांस, घास, लकड़ी से इसकी दीवारें और छत बनाई जाती हैं। इसकी छत को लकड़ी के

स्तम्भों के सहारे टिकाया जाता है। इसकी दीवार बांस एवं लकड़ी से बनी होने के कारण, प्रेक्षकों की संख्या के अनुसार कक्ष के स्थान को कम या अधिक करने के लिए सरकाई जा सकती है। इन नामघरों में द्वारों की संख्या बहुत कम होती है। मणिकूट के सामने वाले स्थल को थोड़ा ऊंचा रखा जाता है जिस पर पौराणिक कथाओं पर आधारित नाट्य एवं नृत्य के कार्यक्रम अथवा भजन-कीर्तन प्रस्तुत किए जाते हैं। ये कार्यक्रम प्रायः इष्टदेव की भक्ति भावना से परिपूर्ण होते हैं, अतएव 'नामघर' को 'प्रार्थना घर' या 'भावना घर' से भी जाना जाता है। धार्मिक भवनों या मंदिरों से सम्बद्ध असम के ये प्राचीन नामघर दक्षिण भारत के कूथाम्बलम् रंगमंडप की भांति अपनी विशेष एवं पृथक पहचान रखते हैं। इसके अतिरिक्त असम में शिव सागर स्थान पर एक प्राचीन एम्फी थियेटर भी मिलता है। इसे असम के अहोमराजा के वंशज प्रमत्तसिंह ने 1744 में जानवरों के युद्ध-प्रदर्शन के लिए बनवाया था। यह दो मंजिल वाला अष्टकोण का मंडप है। यह अर्द्धचंद्राकार है। इस मंडप की विनियोजना एवं संरचना वास्तुशिल्प कला के क्षेत्र में एक उदाहरण है, क्योंकि यह एक दुमंजिले राजप्रासाद की भांति लगता है। यह उत्तरी और दक्षिणी ओर से अति विशाल एवं अन्य दिशाओं में अपेक्षाकृत छोटा है। इसमें आने-जाने के लिए तीन बड़े एवं दो छोटे द्वार निर्मित हैं। राजपरिवार एवं उनके अतिथियों के बैठने के लिए दुमंजिले स्थान पर व्यवस्था है, जो एक भवन की भांति है। सामान्य प्रेक्षक खुले स्थान पर बैठते हैं। इस प्रकार असम प्रांत के उपर्युक्त आच्छादित एवं मुक्ताकाशी प्रेक्षागृहों का प्राचीन प्रेक्षागृहों में अपना महत्व है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रेक्षागृह-सम्बंधी ऐतिहासिक विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन भारत में स्थायी एवं अस्थायी दोनों ही प्रकार के प्रेक्षास्थल थे। अस्थायी प्रेक्षागृह की व्यवस्था मुक्ताकाशी थी। इनमें प्रेक्षक मैदान, मंदिर की वाटिका या किसी पहाड़ी स्थान में बैठ जाते थे, वहीं मध्य में या एक कोने में कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। स्थायी प्रेक्षागृह का स्वरूप प्रारम्भ में एक सामान्य कक्ष की भांति था। इसमें प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था एवं कार्यक्रम को प्रस्तुत करने वाले के स्थान की व्यवस्था प्रायः एक ही धरातल पर होती थी। रामायण, महाभारत एवं बौद्धकाल में ये प्रेक्षागृह अधिकतर राजभवनों की छत्रछाया में संगीतशाला एवं नृत्यशालाओं के रूप में पनपे। इनका सम्बंध राजभवनों एवं मंदिरों से था। ये स्वतंत्र प्रेक्षागृह के रूप में नहीं थे। राजभवनों से सम्बद्ध

प्रेक्षागृह राजाओं के निजी प्रयोग में आते थे, जबकि मंदिरों से सम्बद्ध प्रेक्षागृह सार्वजनिक प्रेक्षागृह के रूप में प्रयोग में आते थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रेक्षागृह भी थे, जिन्हें राजागण ने विजय-यात्रा पर जाते हुए अपने यात्रा-काल में मनोरंजनार्थ, धर्म प्रर्वतकों ने धर्म के प्रचार-प्रसारार्थ या कला साधकों एवं रसिकों ने कला, नृत्य, संगीत एवं नाटक के प्रशिक्षण-प्रदर्शनार्थ किन्हीं पहाड़ी गुफाओं में बना लिए थे। ऐसे गुफा-स्थित प्रेक्षागृह का स्वरूप स्वतंत्र भवन का था। ईसा के 200 वर्ष पश्चात् गुफा-स्थित प्रेक्षा-गृहों का प्रचलन लगभग समाप्त होगया था। फलस्वरूप ईसा के बाद के प्रेक्षागृह मंदिरों एवं राजाप्रासादों के अंग हो गए। ये गुफाओं के आकार के बनाए जाते थे। ये सभी सुविधाओं से पूर्ण विनियोजित एवं समृद्ध थे। मध्यकाल के पश्चात् ये प्रेक्षागृह मंदिर से सम्बद्ध एक सामान्य कक्ष की भांति रह गए। आज दक्षिण भारत के मंदिरों से सम्बद्ध रंगमंडपों में प्राचीन प्रेक्षागृहों का अस्तित्व एवं स्वरूप मिलता है। इनमें ही हमें प्राचीन भारत के प्रेक्षागृह के प्रतिबिम्ब प्राप्त होते हैं। ये प्रेक्षागृह वास्तुशिल्प की प्राचीन शैली पर निर्मित हैं। मंदिर से सम्बद्ध ये प्रेक्षागृह प्राचीनकाल में एक सार्वजनिक स्थल के रूप में प्रयुक्त किए जाते थे। यहां नागरिक या जन सामान्य विभिन्न उत्सवों पर अपने धार्मिक-ज्ञानवर्द्धन एवं मनोरंजन के लिए यहां एकत्रित होते थे, धर्म सम्बंधी प्रवचन सुनते थे। तत्पश्चात् देवपूजा करके देवदासियों एवं अन्य पात्रों द्वारा प्रस्तुत नृत्य, संगीत को देखा एवं सुना करते थे। यहां यह एक बात और उल्लेखनीय है कि मंदिरों से सम्बद्ध ये प्रेक्षास्थल संगीत, नृत्य एवं नाट्य विद्या के प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन केन्द्र भी थे। यही कारण है कि भारत में मंदिरों में स्थित प्राचीन प्रेक्षागृहों का सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में आज भी अति महत्व है।

अध्याय 3

प्राचीन प्रेक्षागृहों का वास्तुशिल्प

गत अध्याय में प्राचीन प्रेक्षागृहों के ऐतिहासिक स्रोतों से यह निश्चित प्राय: है कि प्राचीन भारत में प्रेक्षागृहों का अस्तित्व था। ये प्रेक्षागृह मुक्ताकाशी एवं आच्छादित दोनों प्रकार के थे। कालांतर में बाहर से आए आक्रमणकारियों द्वारा ये ध्वंस लीला के शिकार हो गए। फलस्वरूप सुनियोजित प्रेक्षागृहों के स्थापत्यावशेष आजकल नहीं मिलते हैं। सुनियोजित प्रेक्षागृहों का निर्माण-विधान सामान्य गृह अथवा कक्ष के निर्माण-सिद्धांत से सर्वथा भिन्न वास्तुशैली में होता है। केवल चारों ओर दीवार खड़ी करने और उन पर छत डालने से ही प्रेक्षागृह का वास्तु-कार्य पूर्ण नहीं हो जाता है। किसी भी प्रेक्षामंडप में जहां एक ओर प्रेक्षकों के बैठने के लिए सुविधापूर्ण आसन की व्यवस्था होती है, वहीं दूसरी ओर उन्हें सामने के स्टेज से प्रस्तुत कार्यक्रम निर्बाध सुनाई और दिखाई दे सकें, इस बात का ध्यान प्रेक्षागृह की निर्माण-योजना के समय रखा जाता है। कक्ष में स्टेज की ऊंचाई, लम्बाई और चौड़ाई आनुपातिक हो, यह बात भी महत्वपूर्ण होती है। नेपथ्य का स्थान सुनिश्चित होता है। इसमें ध्वनि का समुचित विस्तरण हो, इसके लिए रंगपीठ एवं प्रेक्षक-स्थल की छतों में विषमता होती है। खिड़कियों की संख्या कम हो, जिससे बाहर से ताजी हवा आ सके, किन्तु अंदर की ध्वनि बाहर न जा सके आदि-आदि। मूल नियमों का व्यवहार प्रेक्षागृह-वास्तुशिल्प के अंतर्गत किया जाता है। अब यहां यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि क्या प्राचीन काल में भी प्रेक्षागृह निर्माण के समय उक्त मूल-सिद्धांत व्यवहृत होते थे? प्रेक्षागृह का आकार-प्रकार एवं उनका निर्माण-कार्य कैसे होता था? उन दिनों प्रेक्षागृहों के निर्माण में प्रयोग की जाने वाली सामग्री क्या थी? प्रेक्षागृह के अंदर, आजकल की भांति वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्था कैसे की जाती थी? रंगपीठ (स्टेज) के कितने अंग-उपांग थे? प्रेक्षक-स्थल पर आसन-व्यवस्था कैसी थी? उनकी आंतरिक एवं बाह्य सज्जा अलंकरण की विधि क्या थी? इन सब विषयों की संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित रूप से दी जा रही है।

(क) प्रेक्षागृहों के प्रकार

प्राचीनकाल में मुख्यतः चार प्रकार के प्रेक्षागृहों का प्रचलन था। ये चतुरस्त्र, विकृष्ट, त्र्यस्त्र एवं वृत्त अर्थात् वर्गाकार, आयताकार, त्रिकोणाकार एवं गोल हैं। प्रथम तीन प्रकार के प्रेक्षागृहों का उल्लेख भरतप्रणीत नाट्यशास्त्र में मिलता है तथा 'वृत' प्रकार के प्रेक्षामंडप का उल्लेख शारदातनय कृत 'भाव प्रकाश' में प्राप्त होता है। चतुरस्त्र का अर्थ वर्गाकार, विकृष्ट का आयताकार, त्र्यस्त्र का त्रिकोणाकार तथा वृत्त का गोल या अंडाकार लिया जाता है। नाट्यशास्त्र में वर्गाकार, आयताकार तथा त्रिकोणाकार प्रेक्षागृहों का परिमाण के आधार पर ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ—ये तीन-तीन आकार वर्णित हैं। वृत प्रकार के प्रक्षागृह का कोई निश्चित् परिमाण नहीं दिया गया है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह की व्यवस्था देश, स्थान और समय की आवश्यकता के अनुसार कर ली जाती थी। उदाहरण स्वरूप महाभारत में वर्णित कंस का बृहद रंगवाट आजकल के 'स्टेडियम' के समान है, जबकि काव्यग्रंथ भाव-प्रकाश या काव्यमीमांसा में वर्णित वृत्त, प्रकार का आकार अपेक्षाकृत सूक्ष्म है।

'चतुरस्त्र' पद वास्तुशैली की प्राचीनता को अभिव्यक्त करता है। शब्द-कल्पद्रुम में इसकी व्याख्या "चतस्त्रोऽश्रयः कोणाः अस्य" की गई है। वैदिककाल से पूर्व ही वर्गाकार मंडपों के बनाने की परम्परा थी। चतुरस्त्राकार की यही परम्परा वैदिककाल में यज्ञवेदियों के निर्माण में भी व्यवहृत रही। यह परम्परा वैदिक यज्ञ की पावनता एवं उसके आकार का अनुगमन करती है। चतुरस्त्र अर्थात वर्गाकार के प्रति मीमांसा में संकेत है कि इसमें मानव जीवन की पूर्णता निहित है। जिस प्रकार चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रम और चार अवस्थाएं जीवन की पूर्णता के प्रतीक हैं; उसी प्रकार वास्तुशास्त्र में चार अस्त्रों (कोणों) का महत्व है। प्रेक्षागृह के प्रकार के संदर्भ में 'चतुरस्त्र' या वर्गाकार इसी उद्देश्य की ओर लक्षित करता है। चतुरस्त्राकार प्रेक्षागृहों के निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। यह परम्परा भारत में ही नहीं, अपितु रोम और यूनान के प्राचीन प्रेक्षागृहों में भी विद्यमान थी। वहां पर भी 'डाइनोसिस' देवता के समक्ष चौकोर मंडप को प्रेक्षा-स्थल के रूप में प्रयोग किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मंडप' शब्द चौकोर के लिए ही प्रयुक्त होता था क्योंकि साहित्य में 'रंगमंडप', नाट्यमंडप, सभामंडप आदि शब्द प्रेक्षागृह के अर्थ को इंगित करते हैं। नाट्य-शास्त्र में चतुरस्त्र प्रेक्षागृह के परिमाण के आधार तीन आकार कहे गए हैं। इस

आकार के प्रेक्षागृह में चारों भुजाएं बराबर होती हैं। ये परिमाण इस प्रकार हैं।

108 हस्त का सबसे बड़ा चतुरस्त्र प्रेक्षागृह।

64 हस्त का मध्यम चतुरस्त्र प्रेक्षागृह।

32 हस्त का सबसे छोटा चतुरस्त्र प्रेक्षागृह।

विकृष्ट शब्द की व्याख्या 'शब्द-कल्पद्रुम' के अनुसार इस प्रकार की गई है "विभागेन कृष्टः दीर्घः इति विकृष्ट" अर्थात जो पृथक्-पृथक् लम्बाई एवं चौड़ाई की दिशा में खींचा गया हो। जैन साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन स्थापत्य-शिल्प में 'विकृष्ट' आकार की प्रासाद-निर्माण परम्परा व्यवहृत थी, जिसमें अनेक स्तम्भ स्थापित किए जाते थे। प्रेक्षागृह को विकृष्ट अर्थात आयताकार बनाने का सर्वप्रथम उल्लेख हमें नाट्यशास्त्र में मिलता हैं। वस्तुतः विकृष्ट आकार के प्रेक्षागृह का अपना वैज्ञानिक महत्व है। इसमें स्टेज से उच्चरित स्वर प्रेक्षकों को स्पष्ट एवं शीघ्र सुनाई देता है, क्योंकि स्वर की ध्वनि तरंगें भित्तियों एवं छत से आवर्तित होकर एक बिंदु पर अस्पष्ट एवं विस्वर नहीं होतीं। सम्भवतः भरत मुनि ने इसी ध्वनि-विस्तरण के नियम को ध्यान में रखते हुए विकृष्ट यानि आयत प्रेक्षागृह की परिकल्पना एवं संस्तुति की है। उन्होंने इस प्रकार के तीनों साइजों के प्रेक्षागृहों की केवल एक-एक भुजा का परिमाण दिया है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि आयताकार प्रेक्षागृह एक 'शाला' के रूप में था। इस सम्भावना की पुष्टि प्राचीन वास्तुशास्त्र 'तंत्र समुच्चय' से होती है, जिसमें लिखा है कि शाला वही रम्य और सुंदर होती है, जिसकी विस्तार से दुगुनी लम्बाई हो। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कक्ष को आयताकार बनाने के लिए उस कक्ष की लम्बाई उसकी चौड़ाई से प्रायः दुगनी रखी जाती है। ऐसे कक्ष को 'शाला' की संज्ञा दी जाती थी। भरत ने आयत प्रेक्षागृह के तीन साइज कहे हैं, जिनके परिमाण निम्नलिखित हैं।

ज्येष्ठ आयत प्रेक्षागृह	108 हस्त = 162 × 71 फुट
मध्यम आयत प्रेक्षागृह	64 हस्त = 96 × 48 फुट
छोटा आयत प्रेक्षागृह	32 हस्त = 32 × 24 फुट

उपरोक्त आयत प्रेक्षागृह को 'नाट्यशाला', 'रंगशाला', 'नृत्यशाला', 'संगीत-शाला' आदि नामों से जाना जाता था।

त्र्यस्त्र का अर्थ तीन कोणों वाला। प्राचीन साहित्य में त्र्यस्त्र का उल्लेख 'प्रासाद के आकार' के लिए हुआ है। महाभारत के सभापर्व में विमानाकार सभा-

मंडप का संकेत है, सम्भव है यह विमानाकार प्रेक्षागृह त्रिकोणाकार रहा हो। स्थापत्य कला के विद्वान् 'विमान' को एक द्रविड़ वास्तुशैली स्वीकार करते हैं, जिसे मय वास्तुविद् ने प्रासादों के आकारों के लिए प्रयुक्त किया था। प्राचीन वास्तुग्रंथ शिल्पशास्त्र के अनुसार स्तम्भों के आधार पर बनाए गए दो या तीन खंडों वाले प्रासाद को 'विमान' कहा जाता है। भरत के द्वारा निर्दिष्ट नाट्यमंदिर के दो खंड होते थे। वह इस शैली में बनाया जाता था कि उसका आकार विमान जैसा लगता था। आज भी दक्षिण भारत के प्राचीन स्थापत्य 'विमानाकार' में बने हुए प्राप्त होते हैं। कांचीपुरम् के मंदिर में त्रिमानाकार नाट्यमंडप है। वस्तुतः ऐसा जान पड़ता है कि त्रिकोणाकार विमानाकार का पर्याय है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह में अंदर की व्यवस्था आयत प्रेक्षागृह की तरह होती है। नाट्यशास्त्र में त्रयस्त्र प्रेक्षागृह के तीन आकार वर्णित हैं। उनके परिमाण निम्नलिखित हैं। सबसे बड़ा त्रयस्त्र—108 हस्त, मध्यम-64 हस्त तथा सबसे छोटा-32 हस्त।

'वृत्त' आकार के प्रेक्षागृहों का प्रचलन प्राचीनकाल से आज तक व्यवहार में है। प्राचीनकाल में भी ये मुक्ताकाशी और आच्छादित दोनों प्रकार के होते थे। इस प्रकार के प्रेक्षागार के मध्य में स्टेज निर्मित होता है। महाभारत के आदि पर्व में वर्णित स्वयंवर मंडप वृत्ताकार है, जो काफी विशाल है। ऐसा जान पड़ता है कि ईसा से बहुत वर्षों पूर्व योरोपियन देशों में भी ऐसे ही वृत्ताकार प्रेक्षागृहों का प्रचलन था। इटली की राजधानी रोम में ईसा से लगभग तीन शताब्दी पूर्व वृहद वृत्ताकार प्रेक्षागार का निर्माण किया गया था। यह मुक्ताकाशी था। इसके मध्य में विशाल गोल चबूतरे पर स्टेज था, जिस पर अभिनय के समय हाथी, घोड़े, ऊंट तक लाए जाते थे। मंच के चारों ओर सोपानाकृत आसनों से युक्त यह प्रेक्षागार सब ओर ऊंची-ऊंची, दीवारों से घिरा हुआ था। इसमें कई स्तम्भ थे और यह सुंदर मूर्तियों से अलंकृत था।

वृत्त प्रकार के प्रेक्षागृह की उपयोगिता क्रीड़ा-प्रदर्शन, मल्लयुद्ध प्रदर्शन, सरकस के लिए विशेषतः होती है। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल के नौटंकी, रामलीला, रासलीला, जात्रा आदि के कार्यक्रम इसी प्रकार के प्रेक्षागार में आज भी प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें संगीत मिश्रित नाट्य प्रयोग किया जाता है। वृत्त प्रेक्षागार के तीन ओर दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है तथा एक ओर संगीतज्ञों एवं वादकों यानी आर्केस्ट्रा का प्रबंध होता है। रंगपीठ (स्टेज) कभी-कभी दर्शक-स्थल से ऊंचा होता है, तो कभी-कभी प्रेक्षक-स्थल से दो फुट नीचा। इस स्थिति में

प्रेक्षकों के आसन पीछे की ओर क्रमशः ऊंचे होते चले जाते हैं। आजकल वृत्त प्रेक्षामंडप में चक्रिल रंगमंच की व्यवस्था होती है। इसमें दृश्य परिवर्तन के लिए चक्र को घुमा दिया जाता है, जहां पर दूसरी ओर अन्य दृश्य तैयार रहता है। यह मंच दर्शक स्थल से ऊंचा होता है।

वृत्त प्रकार के प्रेक्षागृहों का कोई निश्चित परिमाण प्राचीन शास्त्रों में नहीं कहा गया है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह अत्यधिक विशाल भी थे, जो प्रायः मुक्ताकाशी थे। इसके अतिरिक्त ये राजभवनों से सम्बद्ध भवन निवेश भी थे, जो आकार में प्रायः छोटे होते थे तथा इन पर छत होती थी। प्राचीन-शास्त्रों में वृत्त-प्रेक्षागार को 'रंगमंडल', 'रंगवाट' आदि की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के नामों से स्वतः ही वृत्त प्रकार के प्रेक्षागृह का बोध एवं परिचय हो जाता है। आजकल वृत्त प्रेक्षागृह का प्रतिनिधित्व स्टेडियम करते हैं। इन स्टेडियमों में प्रमुख दिल्ली में निर्मित इन्दिरा गांधी इनडोर स्टेडियम है।

(ख) प्रेक्षागृहों की निर्माण-शैली

ऊपर वर्गाकार, आयताकार, त्रिकोणाकार तथा वृत्त प्रकार के प्रेक्षागृहों की विनियोजन उपयोगिता एवं उनके विभिन्न परिमाणों के विषय में विवेचन किया गया है। अब इन प्रेक्षागृहों के निर्माण से पूर्व भूमि-परीक्षण एवं शोधन तथा निर्माण के आरम्भ करने पर शुभ नक्षत्रों के विचार पर प्रकाश डाला जा रहा है।

भू या मिट्टी परीक्षा एवं शोधन

प्रेक्षागृह भवनवास्तु के लिए प्रशस्त भूमि होनी आवश्यक है। इसलिए भूमि की भली-भांति परीक्षा करनी चाहिए। प्राचीन वास्तुशास्त्रों के अनुसार श्वेत, लाल, पीले तथा काले रंग की मिट्टी भवनवास्तु के लिए श्रेष्ठ होती है। यह कठोर, स्थिर और समतल होनी चाहिए। समरांगण-सूत्रधार में भूमि की श्रेष्ठता के परीक्षण का नियम उल्लिखित है। इस शास्त्र के अनुसार जहां मिट्टी का परीक्षण करना है, वहां एक निश्चित गहराई तक खोदे गए गड्ढे में पानी भरने के पश्चात् उसके पास दीपक प्रज्वलित करें। यदि वह दीपक किसी निर्धारित अवधि तक जलता रहे तो वहां की भूमि श्रेष्ठ होती है। गड्ढे में पानी भर कर परीक्षण करने का तात्पर्य यह है कि यदि मिट्टी के कणों में अंतर होता है तो वह भूमि निर्बल होती है और अधिक पानी सोखती है। ऐसी मिट्टी पर बनाए गए भवनों के भार

से ये कण परस्पर मिल जाते हैं। फलस्वरूप भवन की नींव बैठने की आशंका रहती है। अतएव कम पानी सोखने वाली भूमि श्रेष्ठ होती है। इसी प्रकार गड्ढे के समीप दीपक प्रज्वलित करने का वैज्ञानिक आधार यह है कि कोमल तथा अम्लीय लवणों से युक्त भूमि शक्तिहीन होती है। इन लवणों का परीक्षण भूमि में पानी डालकर किया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप कार्बन डाई-आक्साइड आदि गैस निकलती है। इन गैसों का प्रभाव प्रज्वलित दीपक-ज्वाला पर पड़ता है। देर तक जलने वाले दीपक से अनुमान कर लिया जाता था कि भूमि, प्रेक्षागृह की भवनवास्तु के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

भूमि परीक्षण का यह महत्वपूर्ण कार्य ज्योतिषशास्त्र के आधार पर शुभ दिन और शुभ मुहूर्त पर किया जाता था। प्राचीन समय में भूमि की परीक्षा करने के पश्चात् भूमि का शोधन आवश्यक होता था। इसके लिए भूमि पर से हड्डी, कील, झाड़, फूस आदि हटाकर उसे हल से जोतकर समतल किया जाता है। तदनंतर भूमि पर रेखांकन का कार्य किया जाता है। यह कार्य मजबूत सूत की डोरी से किया जाता है। भरत ने पुष्य नक्षत्र में शुक्ल सूत्र द्वारा भूमि को नापने का निर्देश दिया है। इस सूत्र से भूमि पर प्रेक्षागृह के चिह्न अंकित किए जाते हैं, जो कागज पर बनाए नक्शे की भांति होता है। यह सूत्र-मापन क्रिया बहुत सर्तकता से होनी चाहिए, क्योंकि मापन क्रिया के समय सूत्र के टूटने अथवा मापने में तनिक-सी असावधानी से प्रेक्षागृह के भवन के टूटने या गिरने की आशंका हो सकती है। इस प्रकार सूत्र-मापन क्रिया को सावधानीपूर्वक सम्पन्न किया जाता है।

भारतीय दर्शन में स्थापत्य-कर्म, यज्ञीय कर्म के समान, एक धार्मिक संस्कार है। भारतीय वास्तुकला की विशेषता उसकी अध्यात्मनिष्ठा है। पाश्चात्य विद्वान पर्सी ब्राउन के अनुसार भारतीय वास्तुविद्या का विशेष गुण अध्यात्मनिष्ठा का विशेष सार है, वास्तव में शिल्प-कला भारतीयों की धार्मिक चेतना को साकार करने का साधन है—"the outstanding quality of architecture of India is its spritual content. Architecture of India is evident that fundamental purpose of the building art was to represent in concrete form the prevailing religious consciousness of the people (Percy Brown, Indian Architecture P. 1-12)" भारतीय स्थापत्य निर्माण कला का आधारभूत प्रयोजन मानव की धार्मिक चेतना एवं विश्वास को मूर्त रूप प्रदान कर उसमें अलौकिक शक्ति की कल्पना करना है।

इसी विचार के परिप्रेक्ष्य में, किन्हीं अनिष्ट एवं हानिकारक तत्वों से रक्षा करने के लिए भवन-निर्माण के समय पूजा का विशेष महत्व रहा है क्योंकि विभिन्न प्रकार की पूजा-विधियों एवं देवों में विश्वास से वातावरण में अनुशासन और शुद्धता रहती है। प्राचीनकाल में एतदर्थ प्रेक्षागृह की निर्माण-योजना को आद्योपांत सफल बनाने के लिए पूजा होती थी। ब्रह्मा, विश्वकर्मा, रंगदेवता आदि देवों की आराधना; भूमिपूजा, स्तम्भ स्थापन-पूजा, मतवारिणी-पूजा एवं प्रेक्षागृह प्रवेश के समय पूजा की जाती थी। आज के वैज्ञानिक युग में भी पूजा की परम्परा 'शिलान्यास' एवं 'गृह प्रवेश' के रूप में व्यवहृत है।

भूमि-पूजा सम्पन्न करने के पश्चात् सम्पूर्ण प्रेक्षागृह को दो बराबर भागों में विभक्त किया जाता था। पूर्व भाग में विभक्त भाग प्रेक्षक-स्थल कहलाता तथा पश्चिम वाला विभक्त भाग स्टेज के लिए रहता था। पूर्व की ओर मुख्य प्रवेश द्वार होता था। इस पर मजबूत दरवाजे लगे होते थे। इस दरवाजे पर रक्षक के रूप में महाबली नागों को नियुक्त किया जाता था। (ना० शा 1/88)

प्रेक्षक-स्थल का प्रेक्षकों से घनिष्ठ सम्बंध होता है। इसलिए रंगमंच के प्रत्येक कार्यक्रम समुचित रूप से दृश्य एवं श्रव्य होना आवश्यक है। उनकी इन सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही प्रेक्षक-स्थल (ओडियेन्स प्लेस) का निर्माण किया जाता था। एतदर्थ प्रेक्षाभवन न तो बहुत बड़ा और न ही अधिक छोटा होना चाहिए। ऐसा निर्देश भरत ने प्रेक्षागृह निर्माण विधान में दिया है। प्राचीनकालीन यूनान में प्रेक्षागृह, विस्तार में, भारतीय प्रेक्षागृहों से बड़े बनते थे किंतु भरत ने मध्यमाकार प्रेक्षागृह की संस्तुति की है। इस मध्यमाकार का परिमाण 96 × 48 फुट कहा गया है। आज भी सिनेमागृह, रंगशाला आदि के लिए लगभग यही परिमाण रखा जाता है। प्रेक्षक-स्थल तीन ओर दीवारों तथा ऊंची छत से बंद रहता था। इस स्थल पर रंगमंच से उच्चारित ध्वनि प्रेक्षकों को स्पष्ट और समुचित रूप से सुनाई दे सके, इस ध्वनि में गम्भीरता हो तथा वह बाहर न जा सके, इसलिए प्रेक्षक-स्थल पर कम संख्या में खिड़कियां बनाई जाती थीं। इससे ध्वनि में प्रतिध्वनितता का दोष नहीं आता है। प्रेक्षक-स्थल पर प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था विशेष महत्व रखती है। इस स्थान पर यदि पीछे की पंक्ति के प्रेक्षकों को आगे की पंक्ति में बैठे प्रेक्षकों से कोई व्यवधान रंगमंच के दृश्यावलोकन में होता है, तो वह सुव्यवस्थित एवं विनियोजित प्रेक्षागृह नहीं कहलाता। इसलिए प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें आसन पीछे की ओर ऊंचे

होते जाएं। इस नियम को व्यवहार में लाने पर पीछे बैठे प्रक्षकों को आगे की पंक्ति में बैठे प्रेक्षकों से रंगपीठ के दृश्यावलोकन में व्यवधान नहीं होता है। नाट्य-शास्त्र में कहा गया है कि प्रेक्षकों के आसनों की अग्रपंक्ति की ऊंचाई भूमितल से डेढ़ हाथ यानी पौने दो फुट होनी चाहिए तथा दोनों आसनों की ऊंचाई का पारस्परिक अंतर आधा हाथ यानी नौ इंच होना चाहिए। दोनों आसन पंक्तियों की ऊंचाई का परिमाण अर्द्ध हस्त (9 इंच) दिया गया है। ये आसन लकड़ी या पत्थर के बनाए जाते थे। इन आसनों की चौड़ाई एक हाथ (डेढ़ फुट) होती थी। सोपानाकृति आसनों का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। नागार्जुन कोंडा में प्रेक्षागार में आसन पंक्तियां उपरोक्त नियमों के अनुसार निर्मित हैं। इसी प्रकार की आसन रचना की शैली प्राचीन ग्रीक प्रेक्षागृहों में प्राप्त होती है।

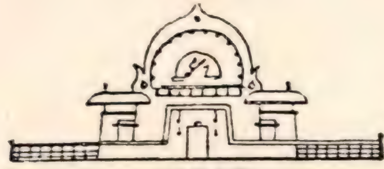
ऊपर प्राचीन प्रेक्षागृहों में आसनों की निर्माण-विधि पर प्रकाश डाला गया है। अब यह बताना अपेक्षित है कि प्रेक्षकों के लिए आसनों की व्यवस्था किस प्रकार होती थी। प्राचीन कालीन प्रेक्षागृहों में प्रेक्षकों के लिए सुनिश्चित आसन व्यवस्था के कुछ संकेत नाट्यशास्त्र एवं प्राचीन वास्तु-शास्त्रों में प्राप्त होते हैं। प्रेक्षक-स्थल पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णों में प्रेक्षकों के बैठने के लिए स्थान पूर्व निर्धारित होते थे। स्थान का निर्धारण विभिन्न स्तम्भ लगा-कर किया जाता था। ये स्तम्भ श्वेत, रक्त, पीत एवं नीले रंग से रंगे होते थे। श्वेत रंग ब्राह्मणों के, रक्त रंग क्षत्रियों के, पीत रंग वैश्यों के तथा नीला रंग शूद्रों के लिए कहा गया है। इन्हीं रंगों से पुते या सजे स्तम्भों के पास बने आसनों पर सार्ववर्णिक प्रेक्षक बैठते थे। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट व्यक्ति जैसे राजा, मंत्रीगण, मनीषी, दार्शनिक आदि के लिए आसन व्यवस्था रंगपीठ के सामने कुछ दूरी पर होती थी। इन प्रेक्षागार में आयोजित संगीत, नृत्य या नाटक के गुण-दोषों को जानकर निर्णय करने के लिए प्राश्निकों एवं सिद्धि लेखकों की आवश्यकता होती है। भरत के नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि उस समय निर्णायकों के लिए प्रेक्षक-स्थल पर आसन एक निश्चित स्थान पर होते थे। इन आसनों की दूरी रंग-पीठ (स्टेज) से 12 हस्त के अंतर पर होती थी। (ना० शा० 27/73, 74)। प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि उक्त प्रकार की आसन-व्यवस्था सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में सामान्यतः प्रयुक्त थी। ये प्रेक्षागृह सार्वजनिक देव-मंदिर एवं राजगृहों से सम्बंद्ध होते थे।

ऊपर प्रेक्षागृह के अंदर प्रेक्षक-स्थल के विषय में बताया गया है। अब रंग-पीठ स्थल की योजना एवं शैली के विषय में साहित्यिक उल्लेखों के आधार पर वर्णन किया जाएगा। यह निम्नलिखित है।

प्रेक्षागृह का पश्चिमी अर्द्धभाग रंगमंडप के लिए निर्धारित किया गया है। नाट्यशास्त्र में लिखा है कि रंगमंडप को पुनः दो भागों में विभाजित करना चाहिए। उसके अग्रभाग को रंगपीठ के लिए काम में लाना चाहिए तथा पृष्ठ भाग को पुनः दो भागों में विभक्त करके रंगशीर्ष एवं नेपथ्य स्थल बनाना चाहिए नाट्यशास्त्र के अनुसार 'रंगपीठ' स्टेज का अग्रभाग, 'रंगशीर्ष' स्टेज का मध्य भाग तथा 'नेपथ्य' स्टेज का पृष्ठ भाग है। नाट्यशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विकृष्ट (आयताकार) प्रेक्षागृह में स्टेज पर रंगशीर्ष (स्टेज का मध्य भाग) रंगपीठ (स्टेज का अग्रभाग) की अपेक्षा ऊंचा होता है। तथा चतुरस्त्र (वर्गाकार) में दोनों स्थल एक ही ऊंचाई के होते हैं। (ना० शा० 2/100) रंगशीर्ष यानी स्टेज का पृष्ठभाग भूमि धरातल से कितना ऊंचा होता था? इसके विषय में पृथक रूप से जानकारी नहीं मिलती है, किंतु भरत के नाट्यशास्त्र में एक स्थल पर उल्लिखित संकेत से अनुमान किया जा सकता है कि रंगशीर्ष भूमि के धरातल से डढ़ हाथ यानी पौने दो फुट ऊंचा होता था। रंगपीठ सम्भवत:भूमि के धरातल पर ही स्थित होता था। इस स्थान पर रंगपूजा सम्पन्न की जाती थी। रंगशीर्ष को ऊंचा रखने से वहां होने वाला कार्य व्यापार सभी प्रेक्षकों के लिए दृष्टि सुलभ हो जाता है। रंगशीर्ष को ऊंचा करने के लिए काली मिट्टी से भराव किया जाता था और उसके फर्श को समतल बनाया जाता था। भरत ने निर्देश दिया है कि रंग का धरातल कछूए की पीठ की तरह मध्य में ऊंचा न हो और न ही यह मछली की पीठ की भांति ढालू हो। उसे स्वच्छ और शुद्ध दर्पण के समान समतल और चिकना किया जाना चाहिए। नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि रंगमंच-स्थल पर मध्य में बेदी बनाई जाती थी। इस बेदी पर अलंकरण के लिए कम ऊंचाई वाले लकड़ी के स्तम्भ खड़े किए जाते थे, जिन पर कारीगर अपने रचना कौशल से सुंदर-सुंदर चित्रों को उत्कीर्ण करते थे। इन स्तम्भों को पुष्पों एवं रत्नों से सुसज्जित किया जाता था।

प्राचीन प्रेक्षागृहों में रंगमंच-स्थल पर रंगपीठ एवं रंगशीर्ष के मुख्य अवयवों के पश्चात् नेपथ्य का भी विशेष महत्व है। यह रंगमंच-स्थल का एक अभिन्न स्थल है। नाट्यशास्त्र में निर्देश दिया गया है कि रंगमंच स्थल वाले भाग के परिमाण

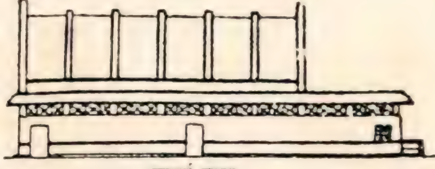
प्राचीन भारतीय प्रेक्षागृहों के रेखाचित्र (पृ० सं० 47)



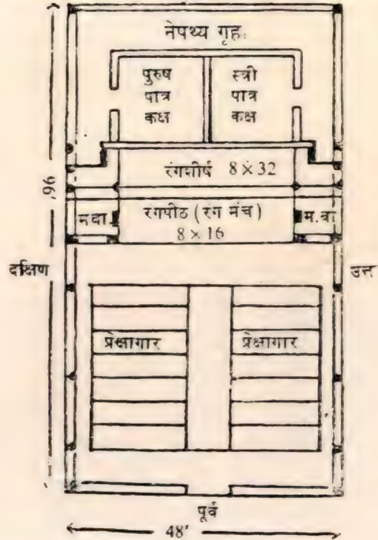
सम्मुख दृश्य
(FRONT ELEVATION)



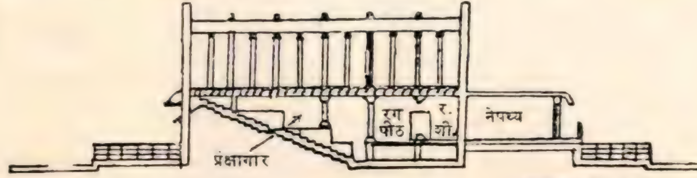
पृष्ठ दृश्य
(CROSS SECTION)



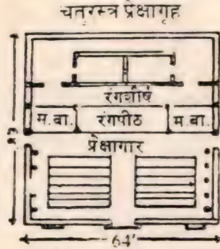
पार्श्व दृश्य
(SIDE ELEVATION)



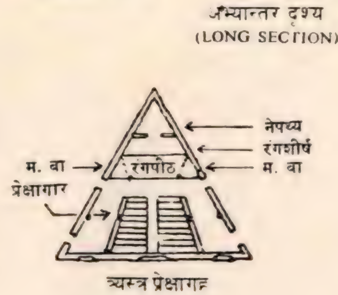
विकृष्ट प्रेक्षागृह



अभ्यान्तर दृश्य
(LONG SECTION)



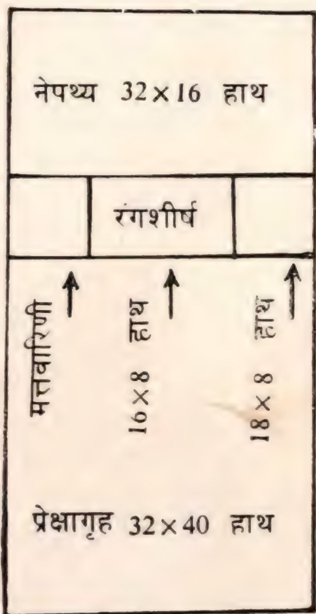
चतुरस्त्र प्रेक्षागृह



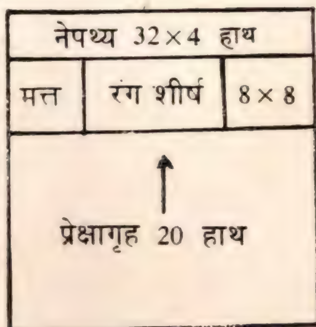
त्र्यस्त्र प्रेक्षागृह

आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से नाट्य मंडपों के विभिन्न रूप

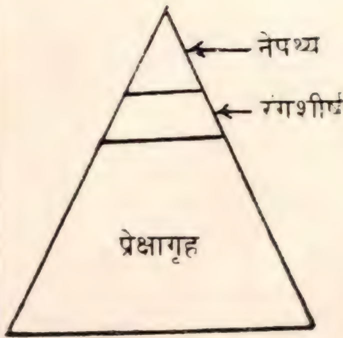
एम० एम० घोष द्वारा भरत कल्पित नाट्य मंडपों की रूपरेखा। (पृ० सं० 47)



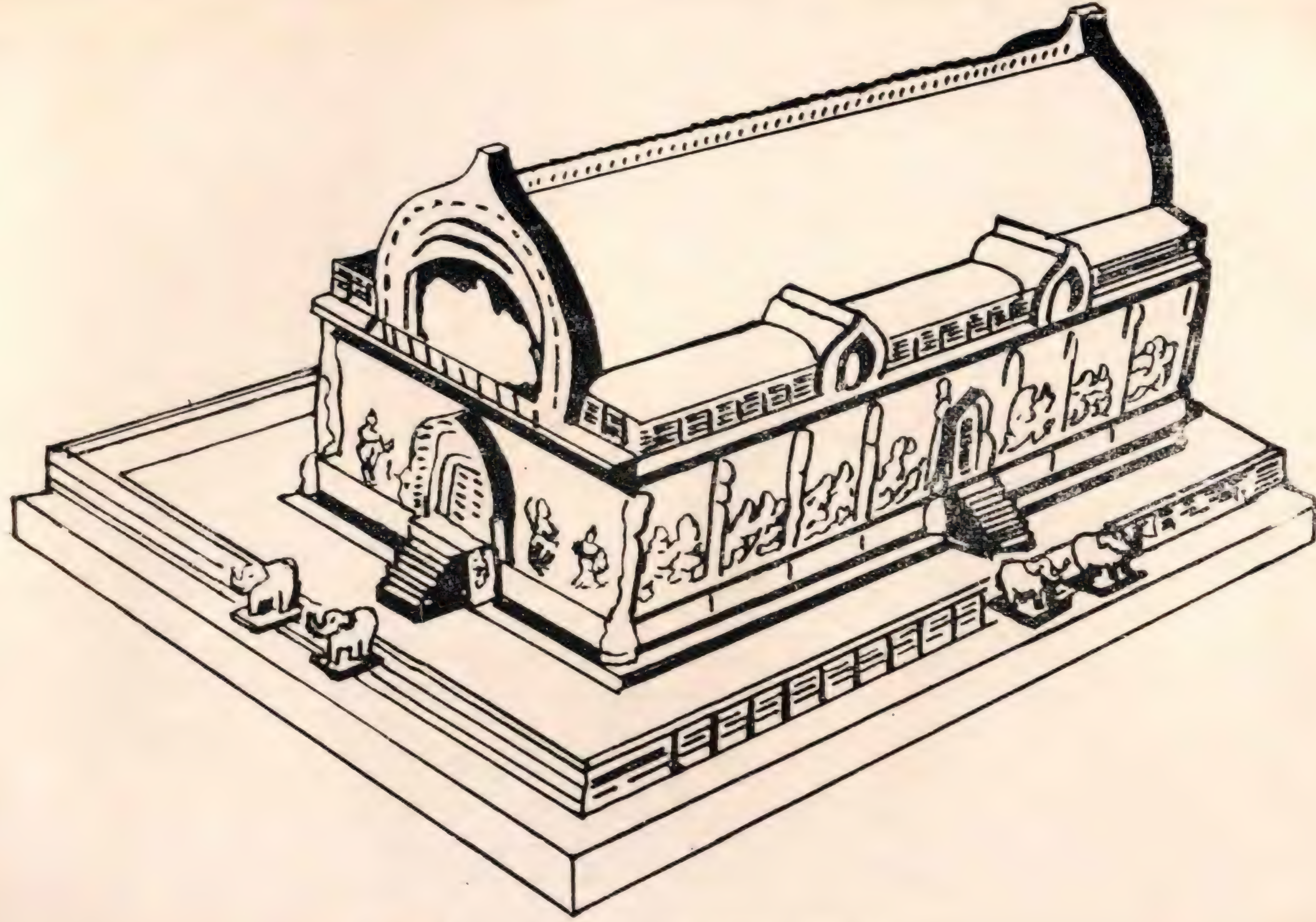
विकृष्ट मध्य नाट्य मंडप



चतुरस्त्र नाट्य मंडप



त्रिकोण नाट्य मंडप



शान्ता गांधी द्वारा कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रेक्षागृह का प्रारूप

को दो बराबर भागों में विभाजित किया जाए। इनमें से प्रेक्षकों के सम्मुख वाले भाग क्रमशः रंगपीठ तथा रंगशीर्ष हैं तथा पृष्ठ वाला भाग नेपथ्य के लिए निर्धारित है। इस निर्देश के अनुसार मध्य आकार आयत प्रेक्षागृह में एक चौथाई भाग नेपथ्य स्थल के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। मध्यम आयताकार प्रेक्षागृहों का परिमाण 64 × 32 हस्त होने पर नेपथ्य स्थल 16 × 32 हस्त यानी 24 × 48 फुट के परिमाण वाला होना चाहिए।

आधुनिक युग में नेपथ्य को 'ग्रीन रूम' की संज्ञा से जाना जाता है। नेपथ्य-स्थल की उपयोगिता के विषय में उल्लेख मिलता हैं कि वह यह स्थल है, जहां पात्रों द्वारा साज-सज्जा की क्रिया होती है। यहां पात्र विभिन्न भूमिकाओं को प्रदर्शित करने के लिए अपना प्रसाधन करते हैं। नेपथ्य गृह के द्वारों के मध्य में मृदंग आदि को रखने का निर्देश 'अभिनव भारती' एवं 'शिल्परत्न' में मिलता है। नेपथ्य का धरातल रंगशीर्ष से ऊंचा होता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार पात्र इस नेपथ्य स्थल से सजकर रंगभूमि पर उतरते हैं। यहां एक बात विचारणीय है कि भरत निर्दिष्ट नेपथ्य-स्थल का परिमाण रंगपीठ एवं रंगशीर्ष के परित्याग के बराबर है। अब प्रश्न यह उठता है कि नेपथ्य का रंगमंच के बराबर इतना बड़ा स्थान पात्रों की साजसज्जा के स्थान के लिए ही क्यों रखा गया है? क्या इस स्थान का प्रयोग किन्हीं अन्य कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए भी होता था? इन प्रश्नों का समाधान प्राचीनकाल में संस्कृत नाटकों के अध्ययन करने से होता है। इन नाटकों में अलौकिक दृश्य, अथवा गर्भ नाटक आदि को प्रस्तुत करने का उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही 'अवतीर्य', 'आरूध्य' आदि शब्दों का प्रयोग भी प्रायः नाटकों में मिलता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे दृश्यों को नेपथ्य-स्थल से प्रस्तुत किया जाता है। उत्तररामचरित के सातवें अंक में अभिनीत गर्भनाटक इसका प्रमाण है। इस कृति के सातवें अंक में 'गर्भनाटक' को दिखाने से पूर्व 'वाद्ययंत्रों के हटाने' का निर्देश दिया गया है। ऊपर यह बताया जा चुका है कि वाद्ययंत्र यानी मृदंग आदि रखने का स्थान नेपथ्य द्वार है। यह रंग-शीर्ष और नेपथ्य के मध्य है। इससे यह स्पष्ट है कि नाटक के कुछ विषयेतर कथानक के दृश्यों को प्रस्तुत किए जाने से पूर्व वहां पर रखे वाद्ययंत्रों को हटा दिया जाता था। यूनान एवं ग्रीक की प्राचीन रंगशालाओं में भी वाद्ययंत्रों का स्थान रंगभूमि से ऊंचा होता था। वहां अलौकिक दृश्यों का अभिनय भी इसी स्थल से होता था। इसकी ऊंचाई रंगपीठ से ढाई फुट होती थी। इससे ऐसा

जान पड़ता है कि भारत एवं यूनान के प्रेक्षागृहों में बहुत कुछ साम्यता थी। वहां पर रंगमंच तीन धरातलों रंगपीठ, रंगशीर्ष एवं नेपथ्य स्थल में विभक्त रहता था। प्रथम धरातल रंगपीठ का तल (जो भूमि पर ही होता था), दूसरा धरातल रंगशीर्ष का तल (जो भूमि से दो फुट ऊंचा होता था) और तीसरा धरातल (जो नेपथ्य स्थल से बोधित है), दूसरे धरातल से लगभग ढाई तीन फुट ऊंचा रखा जाता था। आधुनिक युग में भी इस प्रकार की रंगमंच व्यवस्था 1918-19 में पारमा में 'तेआत्रोंफार्नीस' रंगशाला में परिलक्षित होती है। भारत में कोणार्क मंदिर से सम्बद्ध नटमंदिर के ध्वंसावशेषों से पता चलता है कि रंगमंच दो या तीन धरातलों में विभाजित किया गया था। इस प्रकार के बहु धरातलीय रंगमंच पर उस समय विद्युत के यंत्रों के अभाव में पाताल, पृथ्वी एवं भूलोक के दृश्यों को दर्शाने में सुविधा रहती थी।

ऊपर प्रेक्षागृह के अंदर की भूमि को विभिन्न भागों में विभाजित करके, उनकी व्यवस्था एवं उपयोगिता के विषय में प्राचीन साहित्य में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर वर्णन किया गया है। अब प्राचीन प्रेक्षागृहों के अंदर अनेक अंग-उपांगों एवं उनके स्थापत्य-शिल्प-शैली के विषय में निम्नलिखित रूप में बताया जा रहा है।

षडदारूक—भरत ने प्रेक्षागृह में रंगशीर्ष के प्रसाधन के लिए षडदारूक कर्म का विधान किया है। यह एक ऐसी स्थापत्य-वास्तु-शैली है, जिसमें छह लड़ियों के समूह से बना एक ढांचा होता है। इस ढांचे को प्रायः छत के पाटने में प्रयोग किया जाता है। अथर्ववेद में भी 'षडदारूक' की इस विधि का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें उपमित, परिमित तथा प्रतिमित पदों का प्रयोग होता है। सीधे दो स्तम्भों को 'उपमित' कहा' गया है। इस पर आधारित ऊपर नीचे के दो स्तम्भों को 'परिमित' कहा गया है तथा दो स्तम्भों के गुणा के आकार को (x) प्रतिमित कहा गया है। प्रेक्षागृह में यह रंगशीर्ष के अधोभाग पर लगाया जाता है। स्टेज पर षडदारूक लगाने का लाभ यह है कि नृत्य या नाट्य प्रयोग के समय पात्रों के भागा-दौड़ी, उठा-पटक आदि के दृश्यों के प्रदर्शन में यह पात्रों के भार को वहन कर लेता है क्योंकि इस प्रकार के ढांचे के केन्द्र बिंदु पर मंच का गुरुत्व टिका होता है। नाट्य शास्त्र में उल्लिखित है कि रंगशीर्ष पर यह लगाने के पश्चात् इसमें भराव किया जाता था। आधुनिक युग में भी प्रेक्षागृह के रंगमंच-स्थल में केवल कच्चा भराव करके उसके ऊपर लकड़ी का फर्श बनाया जाता है। इसका वैज्ञानिक

कारण यह है कि इस पर से उच्चरित स्वर प्रतिध्वनित नहीं होता, अपितु इसके विपरीत उसमें स्वाभाविक माधुर्य आ जाता है।

मतवारणी—प्रेक्षागृह में रंगमंच-स्थल पर 'मतवारणी' बनाने का निर्देश भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र के पूर्वकालीन साहित्य में रंगमंडप से सम्बद्ध सामग्री का वर्णन है, किन्तु मतवारणी का उल्लेख कहीं नहीं है। सम्भवतः उस समय प्रेक्षागृहों की निर्माण-विद्याओं का इतना विकास नहीं हुआ था और यही कारण है कि प्रेक्षागृहों के प्रसंग में मतवारिणी का वर्णन नहीं हुआ है। 'मतवारणी' की उपयोगिता नाट्य-प्रयोग में समझते हुए ही भरत ने इसका परिचय दिया है। उनके समय नाट्य-विद्या का पूर्ण विकास हो चुका था।

भरत ने मतवारिणी के निवेशन के सम्बंध में निर्देश दिया है कि यह रंगपीठ के पार्श्व में होनी चाहिए। इसका परिमाण रंगपीठ के अनुरूप होना चाहिए। चार स्तम्भों से युक्त मतवारिणियों की रचना करनी चाहिए। यह सामाजिकों के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ की ऊंचाई की हों। ये मतवारिणियां संख्या में दो होती थीं। इसका मतवारणी नाम क्यों पड़ा? इसके विषय में कहा जाता है कि इसके स्तम्भों के ऊपर के भाग को आमने-सामने खड़े दो मतवाले हाथियों की उठी हुई सूंडों का आकार दिया जाता है। यह आकार 'चापाकर' जैसा होता है जिसे कालांतर में स्थापत्य विशेषज्ञों ने वास्तु शैली के लिए अपनाया। आजकल इसे 'अम्बारी' कहा जाता है। मतवारणी एक प्रकार से 'बरण्डा' की प्रतिबोधक है। प्राचीन काल में रंगपीठ को भी एक समृद्ध भवन का रूप दिया गया है। इसे आकर्षक बनाने के लिए रंगपीठ के दोनों ओर नाट्यशास्त्र में नाना शिल्पों से मंडित 'मतवारणी' स्थापित करने का विधान बताया गया है। ये मतवारिणियां आवश्यकतानुसार वर्गाकार या आयताकार बनाई जाती थीं। प्राचीन संस्कृत नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नाट्याभिनय में मतावारणी की महती उपयोगिता है क्योंकि प्राचीन काल में एक ही अंक में भिन्न-भिन्न दृश्यों को दर्शाने की परम्परा थी, इन भिन्न दृश्यों का आयोजन मतवारिणियों में कक्ष्या-विभाग करके किया जाता था। आधुनिक युग में प्रेक्षागृहों में मतवारिणियों की व्यवस्था नहीं की जाती हैं। वहां भिन्न दृश्यों को एक ही समय दर्शाने के लिए प्रकाश प्रेक्षण किया जाता है।

स्तम्भ स्थापन—प्राचीन प्रेक्षागृहों में अनेक स्तम्भों को स्थापित करने की परम्परा थी। उत्खनन में प्राप्त मोहनजोदड़ो के विशाल कक्ष में अनेक स्तम्भ

हैं। महाभारत में वर्णित प्रेक्षागारों में अनेक स्तम्भों के होने का उल्लेख प्राप्त होता है। बौद्ध एवं जैन साहित्य में प्राप्त रंगमंडप भी स्तम्भों से युक्त हैं। आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों एवं राजभवनों से सम्बद्ध प्रेक्षामंडपों में स्तम्भों की बहुलता है। प्रेक्षागृहों के अंदर स्थापित स्तम्भों से ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन भारत के अधिकांश प्रेक्षागृह आच्छादित थे। इन आच्छादित प्रेक्षागृहों में स्तम्भों को बड़ी सतर्कता से स्थापित किया जाता था। उस काल में आजकल की भांति दीवारों पर लिंटर डालने की परम्परा नहीं थी। बड़े-बड़े चौकोर शिलाखंडों को धारणी धारण (बीम) और स्तम्भों के सहारे छत के रूप में टिकाया जाता था। एक विशाल कक्ष की छत के लिए अनेक शिलाखंडों की आवश्यकता होती थी। इन सब शिलाखंडों के लिए अनेक स्तम्भ स्थापित किए जाते थे। प्रेक्षागृह में स्तम्भों को इस ढंग तथा कुशलता से खड़ा किया जाता था कि वे प्रेक्षकों के सामने अवरोध न बनें। इससे प्रेक्षकों को रंगमंच का कार्यक्रम बिना अवरोधों के दिखाई पड़ता था। बौद्ध धर्म के कार्ला के चैत्य में अनेक स्तम्भ स्थापित हैं। ये दीवार के साथ कुछ दूरी पर उसकी सीध में खड़े किए गए हैं। आबू, दिलवाड़ा मंदिर के सभामंडप में 24 स्तम्भ हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों में अनेक स्तम्भों की परम्परा थी। इनकी बहुलता से जहां छत को आधार मिलता था, वहीं इनकी स्थापत्य-शिल्प-शैली की सौंदर्य-वृद्धि भी होती थी।

भरत नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह के अंदर विभिन्न प्रकार से स्तम्भों के स्थापन के विषय में उल्लेख मिलता है। ये स्तम्भ प्रेक्षागृहों के आकार-प्रकार के अनुसार 24 से 28 की संख्या तक में होते थे। नाट्यशास्त्र के आधार पर मध्यम आयताकार प्रेक्षागृह में प्रथम चार स्तम्भ चार वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के नाम पर स्थापित होने चाहिए। इस ग्रंथ में ये चार स्तम्भ प्रेक्षागृह के चारों कोणों पर वर्णित हैं। समरांगणसूत्रधार में कहा गया है कि प्रेक्षागृहों के कोणों पर स्थित स्तम्भों की ऊंचाई उसकी भित्ति के बराबर होनी चाहिए। इसके पश्चात् अन्य स्तम्भ रंगपीठ एवं नेपथ्य में निर्दिष्ट किए गए हैं। अंत में छह स्तम्भों का स्थापन प्रेक्षकोपनिवेशन के मध्य में और अन्य आठ स्तम्भों को प्रेक्षक-स्थल की भित्तियों के साथ-साथ स्थापित करने के लिए कहा गया है। स्टेज पर स्तम्भों को स्थापित करने की परम्परा यूनानी रंगशालाओं में भी देखने को मिलती है। स्टेज पर स्तम्भों के स्थापन एवं उनकी संख्या के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है। आधुनिक विद्वान राय कृष्णदास ने प्राचीन प्रेक्षागृहों के रंगपीठ पर केवल

छह स्तम्भों की कल्पना की है। उनका कहना है कि नेपथ्य से रंगशीर्ष पर आने के दो मार्ग होते हैं, अतः नेपथ्य और रंगशीर्ष के मध्य प्रत्येक दिशा की ओर तीन-तीन स्तम्भों का स्थापन रंगपीठ के पार्श्व में होता है। आधुनिक युग में ये पखवाइयों (विंग्स) का काम करते हैं।

यहां स्तम्भों के विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों में स्थापित स्तम्भों में कुछ मुख्य स्तम्भ पत्थर के होते थे, जिन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओं से काटकर पहले तराशा जाता था, तदनंतर उन्हें बड़ी सतर्कता और सावधानी से स्थापित किया जाता था। स्तम्भों को पृथ्वी के अंदर गहरा गड्ढा खोदकर किन्हीं लकड़ी की चौकियों में फंसाकर खड़ा किया जाता था। स्तम्भों को बिना किसी दृढ़ आधार के खड़ा करने की इस प्रकार की प्राचीन शैली का प्रमाण हमें कुम्भरहार के उत्खनन में प्राप्त सभाभवन में खड़े स्तम्भों से मिलता है। सम्भवतः इसीलिए भरत ने ऐसे स्तम्भों के स्थापन में विशेष ध्यान देने को कहा है क्योंकि स्तम्भों के खड़ा करने में प्रायः दोष आ जाते हैं। ये शिला-स्तम्भ छत को टिकाने के लिए होते थे। प्रेक्षागृहों में कुछ स्तम्भ केवल अलंकरण और शोभा बढ़ाने के लिए होते थे। ऐसे स्तम्भ लकड़ी के बने होते थे, जिन पर सुंदर-सुंदर चित्रों को उत्कीर्ण (खोदा) किया जाता था। ये स्तम्भ प्रायः स्टेज पर लगाए जाते थे। आज भी दक्षिण के कूथाम्बलम् रंगमंडप पर लकड़ी के स्तम्भ लगे होते हैं।

प्रेक्षागृह के उपर्युक्त स्तम्भों पर अनेक प्रकार की शिल्प-विधियां की जाती थीं। इन शिल्प-विधियों से स्तम्भों की साज-सज्जा की जाती थी। नाट्यशास्त्र में वर्णित है कि उह, प्रत्यूह आदि छह काष्ठ-शिल्प थे, जिन्हें लकड़ी के स्तम्भों पर उत्कीर्ण किया जाता था। इस काष्ठ-शिल्प में स्तम्भों पर नाना प्रसंगों के अनुरूप विभिन्न डिजायनों को अंकित करने की परम्परा उस समय की वास्तुशिल्प की एक मुख्य विशेषता थी। एक ही स्तम्भ पर कुछ अंतर से भिन्न-भिन्न आलेख उत्कीर्ण किए जाते थे। इन स्तम्भों पर सर्प, सिंह, हाथी आदि के चित्रों से अलंकृत काष्ठ-शिल्प किया जाता था। शिला निर्मित स्तम्भों की भी कटाई और छंटाई करके, छैनी से उनमें विभिन्न डिजायन बनाए जाते थे। ऐसे डिजायन कोणार्क के नटमंदिर में बने स्तम्भों पर दिखाई देते हैं। दक्षिण भारत के मंदिरों तथा राजभवनों से सम्बद्ध प्राचीन रंगमंडपों के स्तम्भों पर सुंदर-सुंदर चित्र शैली देखने को मिलती है। नाट्यशास्त्र में एक स्थल पर उल्लेख है कि विभिन्न वर्णों के स्तम्भों का प्रसाधन चारों वर्णों के लिए निर्धारित श्वेत, रक्त, पीला एवं

नीले रंग से करना चाहिए। इन स्तम्भों पर शालमंजिका या सुंदर मूर्तियां टांगने के लिए कलात्मक ढंग से गजमुख की आकृति की खूंटी बनाई जाती थी, जिन्हें 'नागदंत' कहते थे। इस प्रकार प्राचीन प्रेक्षागृहों में स्तम्भों का निर्माण, उनका विभिन्न स्थानों पर स्थापन, नाना-शिल्पों से मंडित उनका अलंकरण और प्रसाधन किया जाता था। निःसंदेह सुसज्जित स्तम्भों से युक्त तत्कालीन प्रेक्षागृह ललित-कलाओं को प्रस्तुत करने का एक स्थान विशेष बन गया था।

प्राचीन प्रेक्षागृहों में स्तम्भों के साथ 'धारिणी धरण' का भी विशेष महत्व है। इसका उल्लेख नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह निर्माण के संदर्भ में हुआ है। 'धारणी-धरण' से यहां यह प्रतीत होता है कि यह प्राचीनकालीन वास्तुकला का पारि-भाषिक शब्द है। इसे आजकल शहतीर या धरण (धरन) इत्यादि के रूप में जाना जाता है। आजकल की वास्तुकला की विद्या में इसे 'कोलम' या 'बीम' कहा जाता है। यह धारणी धरण दो स्तम्भों के ऊपर आधारित होती है। यह भी शिला या चट्टान को काटकर बनाई जाती थी। तदनंतर भवन की छत को सहारा देने के लिए खड़े दो स्तम्भों पर लेटे हुए आकार में टिकाई जाती थी। इस धारणी धरण को भी कारीगर बड़ी कुशलता से 'कपोत के बैठने की मुद्रा' का सुंदर आकार देकर उन पर नाना प्रकार के चित्रों को उत्कीर्ण करते थे। उत्कीर्ण किए गए चित्रों में विशेषतः सर्प, मछली, मकर आदि रेंगने वाले जीव-जंतुओं के चित्र होते थे। इस प्रकार की धारणी धरण एलोरा की गुफाओं के स्तम्भों पर तथा महाबलिपुरम् की गुफाकक्षों में भली-भांति देखी जा सकती है। कपोताली जैसी धारणी धरण गुरु वायूर के कूथाम्बलम् की छत वाली बीम के सादृश्य है। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित प्रेक्षागृह के लिए 'अलंकृत धारणी धारण' से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में वास्तुशिल्प-शैली अपने उत्कर्ष पर थी।

भित्ति—भारत के प्राचीन साहित्य में 'प्रेक्षागृह', 'नाट्यवेश्म', 'सभाभवन', 'नाट्यगृह', 'संगीतशाला' आदि शब्द मिलते हैं। ये शब्द किसी गृह विशेष के द्योतक हैं। 'भवन' या गृह की संज्ञा सामान्यतः भित्तियों से युक्त स्थल को दी जाती है। प्राचीन प्रेक्षागृह भित्तियों से युक्त थे। नाट्यशास्त्र एवं प्राचीन वास्तु-शास्त्रों से ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह में भित्तियों का निर्माण पक्की ईंटों से करना चाहिए। यह दीवार प्रेक्षागृह के चारों ओर हो। प्रेक्षागृह में भित्ति की ऊंचाई कितनी हो? इस विषय पर कोई विशेष निर्देश नहीं प्राप्त होता है, किंतु समरांगण सूत्रधार में लिखा है कि दीवारों की ऊंचाई भवन के चारों कोणों पर स्थित स्तम्भों

की ऊंचाई के बराबर होनी चाहिए। दक्षिण भारत में प्राचीन स्थापत्य भवनों के स्तम्भों की ऊंचाई सामान्यत: 18 से 22 फुट तक है। इस परिमाण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों की भित्तियों की ऊंचाई 18 से 22 फुट के बीच की रही होगी। भित्तियों को ईंटों से बनाने के पश्चात् उस पर भित्तिलेप करते थे। यह भित्तिलेप मिट्टी और भूसा मिलाकर बनाया जाता था। भित्तिलेप करने के पश्चात् उसे सूखे नेनुए से रगड़कर चिकना किया जाता था। तदनंतर शंख, सीप, बालू को पीसकर उसका लेप करते थे और उन पर विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की जाती थी। प्रेक्षागृह के बाहर की दीवारों पर 'सुधाकर्म' अर्थात चूने से सफेदी की जाती थी। प्रेक्षागृह की चारों तरफ की भित्तियों के अतिरिक्त, प्राचीन प्रेक्षागृह के रंगशीर्ष एवं नेपथ्य के मध्य एक भित्ति बनाने का निर्देश भरत नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। यह भित्ति पृष्ठपट यानी कि 'बैक क्लाथ' का काम करती थी। इस दीवार में दोनों ओर सुसज्जित और अलंकृत एक-एक द्वार का निर्माण किया जाता था। इन द्वारों से पात्र स्टेज पर आते थे। सम्भवत: इस दीवार की ऊंचाई सात फुट रही हो, क्योंकि इसके ऊपर वाले चबूतरे पर नेपथ्य-स्थल होता था, जिस पर आलौकिक दृश्यों को प्रस्तुत किया जाता था। यदि दीवार अधिक ऊंची होगी तो दर्शकों को नेपथ्य-स्थल के कार्यक्रम दिखाई नहीं दे सकते। भरत ने प्रेक्षागृह की भित्तियों का निर्माण और उनका प्रसाधन अत्यंत कलात्मक एवं परिष्कृत रूप से प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा निर्दिष्ट प्राचीन प्रेक्षागृहों की भित्तियों का प्रसाधन विधान तत्कालीन वैभवशाली प्रासादों की वास्तुशिल्प कलाओं का स्मरण कराता है। प्रेक्षागृहों की दीवारों पर पशु-पक्षी तथा स्त्री-पुरुष सम्बंधी आत्मभोगज चित्रों से सुसज्जित करके, भवन को सांसारिक सुख एवं आनंद से परिपूर्ण करता है। दक्षिण भारत के मंदिरों तथा राजभवनों से सम्बद्ध प्रेक्षागृहों तथा गुफा-स्थित प्राचीन प्रेक्षागृहों में आज भी इस प्रकार के भित्तिलेप एव भित्तिचित्र प्राप्त होते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक प्रेक्षागृहों में भित्तिचित्रों का विषय भरत निर्दिष्ट भित्तिचित्र के विषयों के समान ही होता है। आज के प्रेक्षागृहों में दीवारों पर कच्चा प्लास्तर किया जाता है। इस प्लास्तर को चावल की भूसी, गोंद, गोबर आदि मिलाकर तैयार किया जाता है। अब वैज्ञानिक तकनीक से इस कच्चे प्लास्तर की जगह उक्त सामग्री से बनी टाइल्स आने लगी हैं, जिन्हें 'एसबेस्टस' कहते हैं। ये प्रेक्षागृह की दीवारों पर चिपका दी जाती हैं। इस प्रकार की टाइल्स

से बनी दीवारें श्रुतिसिद्ध होती हैं। प्राचीन प्रेक्षागृहों में आजकल की भांति वैज्ञानिक यंत्रों के अभाव में ध्वनि को गम्भीर और मधुर बनाने के लिए दीवारों की बनावट पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

आच्छादन या छत—पहले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि उत्खनन में प्राप्त प्रेक्षागृह के ध्वंसावशेषों से यह ज्ञात होता है कि भारत के प्राचीन प्रेक्षागृह प्रायः आच्छादित थे। प्राचीन साहित्य के उल्लेखों से प्रक्षागृहों के ऊपर छत होने की पुष्टि होती है। प्रेक्षागृहों की यह छत सामान्य भवन की छत के समान सपाट नहीं होती थी, अपितु भवन के मध्य में ऊपर को उठी हुई तथा भवन की दीवारों पर झुकी हुई होती थी। भरत नाट्यशास्त्र में इस प्रकार की छत को 'शैलगुहाकार' कहा गया है। शैलगुहाकार का सामान्य अर्थ है पहाड़ी गुफा के समान ऊपर उठी हुई छत वाली।

मोहनजोदड़ों में प्राप्त विशाल कक्ष की छत दाईं-बाईं भित्तियों पर ढलाऊ रूप से आधारित है। यह गुहा के सदृश प्रतीत होती है। कार्ला के चैत्य की छत भी सपाट न होकर मध्य से उठी हुई है। 'शैलगुहाकार' छत को बनाने का वैज्ञानिक तथ्य यह है कि इस प्रकार के भवन में स्टेज से बोले गए स्वर की तरंगें प्रेक्षकस्थल पर सहज रूप से फैल जाने के कारण श्रोताओं को स्पष्ट रूप से श्रव्य हो जाती हैं, जबकि सपाट छत वाले भवन में ये तरंगें वापिस स्टेज पर चली जाती हैं जिससे श्रोता पात्रों के स्वर को स्पष्ट रूप से नहीं सुन सकते। आधुनिक विद्वान इंजीनियर एवं प्राचीन प्रेक्षागृहों के अध्येता डा० सुब्बाराव इस विषय को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"...that the theatre must have a roof and this roof must be a gable roof hipped at ends and not a flat roof, the acoustical property of a gable roof is to reflect the sound from the stage to the audience in the auditorium and that of the flat roof is to reflect the sound back again to the stage." (Dr. Subharao, Abhinav Bharati, G. O. C. P. 447)

यहां यह विचारणीय है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों की छत कितनी ऊंची होती थी। इसके विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता, किंतु प्राचीन साहित्य एवं स्थापत्यों के प्रमाणों के आधार पर आधुनिक विद्वानों का मत है कि मध्यमाकार प्रेक्षागृह की छत दीवारों की तरफ से 18 फुट की होती हुई ऊपर को क्रमशः ऊंची

होती जाती थी और प्रेक्षक-स्थल के मध्य इसकी ऊंचाई लगभग 27 फुट होती थी। यह छत शिलाखंडों से स्तम्भों एवं धारणी धारण के द्वारा पाटी जाती थी। आबू के दिलवाड़ा जैन मंदिर के सभामंडप की छत इसी प्रकार की है। कभी-कभी शिलाखंडों की छत न बनाकर केवल मोटे कपड़े को 'वितान' के रूप में ताना जाता था। इस वितान से पहले छत को लकड़ी, बांस एवं बल्लियों के ढांचे से छत को शैलगुहाकार का रूप दिया जाता था। आज के प्रेक्षागृहों में भी छत को इसी आकार में बनाने का नियम व्यवहार में लाया जाता है। इसके लिए 'ट्रेसेस' एवं 'आयरन एंगल' प्रयोग में लाए जाते हैं। तदनंतर ऊपर से ए०सी०सी० या टीन की चादरों से पाट दिया जाता है। प्रेक्षागृह के अंदर प्लास्टर आफ पेरिस की छत बनाई जाती है। आधुनिक प्रेक्षागृहों की छत की ऊंचाई भी उसके परिमाण के आधार पर लगभग 25 से 27 फुट तक रखी जाती है।

द्वार

एक विनियोजित और व्यवस्थित प्रेक्षागृह में प्रक्षकों के 'प्रवेश' और 'निर्गम' के लिए द्वार का स्थान महत्वपूर्ण है। भवन के अंदर कितने द्वार हों? उन द्वारों में कितने छोटे और कितने बड़े हों? किन-किन द्वारों पर दरवाजे लगें? ये कितने लम्बे और चौड़े हों? आदि प्रश्न प्रेक्षागृह-निर्माण-विधान में विशेष महत्व रखते हैं। प्राचीन प्रेक्षागृहों में द्वारों की स्थिति कैसी थी? इस प्रसंग पर भरत-नाट्य-शास्त्र एवं प्राचीन वास्तुशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह में अधिक द्वारों का निर्माण वर्जित था। ये द्वार एक-दूसरे के सम्मुख नहीं होते थे। ये द्वार कार्यक्रमों के प्रस्तुत करने के समय भी खुले रहते थे। आजकल की भांति कार्यक्रमों के प्रस्तुतिकरण के समय इन्हें बंद नहीं किया जाता था। इन द्वारों की संख्या दो से छह तक होती थी। इनमें एक द्वार मुख्य होता था, जो पूर्व दिशा में स्थित होता था। आपस्तम्ब श्रोत सूक्त के अनुसार पूर्व का द्वार सांसारिक सुख और वैभव का दाता होता है। इसी लिए प्राचीन प्रेक्षागृह का मुख्य द्वार पूर्व की ओर होता था, जो जन-प्रवेश के प्रयोग में आता था। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् जन-निर्गम के लिए प्रेक्षागृह के दक्षिण की ओर द्वार की व्यवस्था भी होती थी। भवन के बाहर की ओर खुलने वाले द्वारों पर दृढ़ कपाट यानी दरवाजे लगाए जाते थे। ऐसे द्वारों पर रक्षक नियुक्त रहते थे। नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है कि रंगमंच-स्थल पर भी तीन द्वार बनाने का निर्देश है। इनमें से दो द्वार रंग-शीर्ष एवं नेपथ्य की दीवार में पात्रों के आने एवं जाने के लिए होते थे। इन द्वारों

पर लकड़ी के दरवाजे नहीं लगते वरन् इन पर बारीक कपड़े के पर्दे डाले जाते थे। नेपथ्य-स्थल पर तीसरा द्वार होता था। यह द्वार सूत्रधार एवं उसके पात्रों के परिवार के लिए होता था।

इस प्रकार प्राचीन प्रेक्षागृहों में द्वारों की स्थिति, समय एवं उपयोगिता की दृष्टि से कम या अधिक कर ली जाती थी। वृताकार प्रेक्षागृह में द्वार कुछ अधिक संख्या में बनाए जाते थे।

वातायन एवं गवाक्ष

समुचित प्रकाश एवं ताजी हवा के लिए वातायनों एवं गवाक्षों की महती उपयोगिता है। प्रेक्षागृह में एक साथ बहुत प्रेक्षक बैठते हैं। अतएव उनके श्वसन-क्रिया के लिए शुद्ध वायु की अत्यंत आवश्यकता होती है। प्राचीनकाल में आजकल की भांति बिजली के 'एक्जास्ट' तथा सादे पंखे नहीं थे, तब विभिन्न आकार की खिड़कियां ही शुद्ध हवा को लाने एवं अंदर की गर्म हवा को बाहर निकालने का माध्यम थीं। महाभारत में वर्णित वृहदाकार प्रेक्षागार में वातायन एवं गवाक्षों का उल्लेख मिलता है। भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह निर्माण-विधान के अंतर्गत खिड़कियां बनाने का निर्देश मिलता है। भारतीय स्थापत्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वातायन और गवाक्ष भिन्न-भिन्न आकार की खिड़कियां थीं। गवाक्ष वातायन की तुलना में छोटा एवं गाय की आंख जैसा दीखने वाला कुछ गोल होता था। यह दरवाजे के ऊपर दोनों ओर बनाए जाते थे। इन गवाक्षों का प्रत्यक्ष प्रमाण नासिक के विहार में मिलता है, जिसमें द्वार के दोनों ओर इसी प्रकार के गवाक्ष निर्मित हैं। ये गवाक्ष सम्भवत: आजकल के रोशनदान जैसे रहे होंगे, जिनसे भवन के अंदर की गर्म हवा बाहर निकलती है तथा सूर्य का प्रकाश अंदर पहुंचता है। वातायन प्राय: एक प्रकार की लम्बी खिड़की होती थी, इसमें जालियां लगी होती थीं। प्रेक्षागृह के अंदर वातायन और गवाक्षों की संख्या कम होती थी। इनकी संख्या अधिक होने से प्रेक्षागृह के अंदर रंगमंच की ध्वनि अस्पष्ट हो जाती है, क्योंकि अधिक हवा के आने-जाने से स्वर की तरंगों के विस्तरण में बाधा पहुंचती है।

प्राचीन प्रेक्षागृहों का शैलगुहाकार एवं द्विभूमिक होना

पिछले अध्याय में यह बताया गया था कि प्राचीन नाट्य साहित्य में ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन

समय में प्रेक्षागृह द्विभूमिक एवं शैलगुहाकार थे। भरत ने नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह निर्माण-विधान के अंतर्गत प्रेक्षागृह के शैलगुहाकार एवं द्विभूमिक होने का निर्देश दिया है···'कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाटयमण्डप' (ना० शा० 2/80)। इससे प्रतीत होता है कि प्रेक्षागृह की योजना करते समय उसके फर्श एवं छत को निम्नोन्नत बनाने का विचार रखा जाता होगा। इसकी छत विषम स्तर वाली गुफा की छत के समान होनी आवश्यक होती थी। प्रेक्षागृह का रंगमंच स्थल संकरे स्थान पर बनाया जाता था तथा प्रेक्षक-स्थल चौड़े स्थान पर होता था। आजकल शैलगुहाकार को 'भोंपू' के आकार जैसा भी कहा जाता है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह में मुख्य द्वार से ऊंची भूमि का स्तर रंगपीठ की ओर क्रमशः नीचा होता जाता है और कुछ फुट के अंतर पर पुनः यह धरातल रंगमंच से नेपथ्य तक ऊंचा होता जाता है, यह उसी प्रकार है, कि जिस प्रकार गुफा का आकार प्रायः प्रवेश-स्थल के पश्चात् विस्तृत होता है तथा कुछ दूरी के पश्चात् क्रमशः संकीर्ण होता जाता है, इसी प्रकार एक विनियोजित प्रेक्षागृह के अंदर प्रेक्षक-स्थल विस्तृत तथा रंगमंच-स्थल संकीर्ण होता है। इस आकार में बनाए गए प्रेक्षागृहों में ध्वनि श्रोताओं को स्पष्ट सुनाई देती है। इसी बात को लक्ष्य में रखकर भरत ने प्रेक्षागृह को शैलागुहाकार बनाने का निर्देश दिया है। प्रेक्षागृह के कृत्रिम शैलगुहाकार होने का संकेत आचार्य दण्डी ने 'दशकुमार चरित' में दिया है···"महति भूमिगृहे कृत्रिम शैल गर्भोत्कीर्ण नानामण्डप प्रेक्षागृहों···।" इससे ज्ञात होता है कि दण्डी के समय राजभवनों, देवमंदिरों तथा सार्वजनिक भवनों के प्रेक्षागृहों को गुफाकृति में निर्मित किया जाता था। आज भी सिनेमागृह तथा प्रेक्षागृह, जिनमें ध्वनि के विस्तरण की विशेष आवश्यकता होती है, गुफाओं के समान निर्मित किए जाते हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृहों को द्विभूमिक बनाने का निर्देश प्राप्त होता है। किन्तु प्रेक्षागृहों को द्विभूमिक बनाने के निर्देश से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता है कि प्रेक्षक-स्थल तथा रंगमंच-स्थल दोनों ही 'द्विभूमिक' अर्थात् द्वि मंजिले होते थे। उसमें वर्णित रंगमंच निर्माण के संदर्भ में यह बात तो स्पष्ट एवं निश्चित् हो जाती है कि रंगमंच दो या तीन धरातलों में बनाया जाता था। ऐसे रंगमंच प्रायः यूनान एवं रोम की प्राचीन रंगशालाओं में भी थे। किन्तु दर्शकों के बैठने का स्थल भी दुमंजिला होता था, यह स्पष्ट नहीं हो पाता। भारत में उड़ीसा के कोणार्क नट मंदिर का द्विभूमिक रंगमंडप, कुम्भारिया के नेमिनाथ मंदिर में दुमंजिला रंग

मंडप, सानी गुम्फा का जीर्ण-शीर्ण रंगमंडप, रामेश्वरम् के मंदिर में बना दुमंजिला मंडप, त्रिचूर में प्राचीन शैली के रंगमंडप, 'कूथाम्बलम्' में दुमंजिले रंगपीठ से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन प्रेक्षागृहों में रंगमंच प्रायः दुमंजिले होते थे। रंगमंडप की दूसरी मंजिल लकड़ी से बनाई जाती थी।

(ग) प्रेक्षागृहों की प्रकाश-ध्वनि योजना

प्रेक्षागृह-निर्माण में प्रकाश एवं ध्वनि की विधिवत् योजना अत्यंत आवश्यक समझी जाती है। प्रेक्षागृहों में इनका समुचित प्रबंध न होने पर प्रेक्षकों को कार्यक्रम देखने एवं सुनने में असुविधा होती है, अतएव प्रेक्षागृहों में प्रकाश एवं ध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग में प्रेक्षागृहों एवं छवि गृहों में प्रकाश एवं ध्वनि का प्रबंध विद्युत यंत्रों द्वारा किया जाता है। विद्युत का प्रयोग दो उद्देश्यों से होता है, पहला जिससे रंगमंच के दृश्य एवं प्रयोग स्पष्ट दिखाई दे सकें तथा दूसरा इससे प्रेक्षागृहों की अंतः और बाह्य साज-सज्जा हो सके। आधुनिक युग में प्रेक्षागृहों में विभिन्न बल्बों तथा ट्यूबों के द्वारा प्रकाश देने की व्यवस्था है। रंगमंच से उच्चरित स्वरों को ध्वनि प्रसारक यंत्रों के माध्यम से श्रोताओं एवं दर्शकों तक पहुंचाया जाता है। भारत में प्राचीन प्रेक्षागृहों में प्रकाश एवं ध्वनि की क्या व्यवस्था थी ? इस विषय पर निम्नलिखित रूप से विचार किया जा रहा है।

प्रकाश-योजना

प्राचीन साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह में आयोजित कार्यक्रम प्रायः दिन में होते थे। दिन में बाहर से प्रकाश आने के लिए प्रेक्षागृहों में गवाक्षों की व्यवस्था होती थी। इसके अतिरिक्त 'वातायन' और 'जालक' नाम की विभिन्न आकार की खिड़कियों से पर्याप्त प्रकाश प्राप्त हो जाता था। सूर्यास्त के पश्चात् होने वाले कार्यक्रमों में दीपकों को जलाकर प्रकाश किया जाता था। भरत ने नाट्यशास्त्र में एक स्थल पर उल्लेख किया है कि प्रेक्षागृहों में रंगपीठ (स्टेज) पर आलोक हेतु दीपों को रखा जाता है, जिन्हें नाट्याचार्य या संयोजक कार्यक्रम से पूर्व प्रज्वलित करता है। (ना० शा० 3:92,93)। ये दीपक रंगपीठ एवं प्रेक्षण-स्थल पर बने स्तम्भों के ऊपर धारिणी की तुला में रखे जाते थे। 'तुला' दीपकों के रखने का स्थल-विशेष था। इस तुला में दीपक रखने के पलड़े होते थे अथवा कभी-कभी बड़े-बड़े दीपक ही तुला में पलड़ों की भांति लटकते

रहते थे। इन्हें आज भी लोक भाषा में 'तौलो' कहा जाता है। इनमें बड़े दीपकों में बिनौला सहित रूई और तेल डालकर प्रज्वलित किया जाता था। अधिक प्रकाश के लिए मशालों का प्रयोग किया जाता था। पुरातत्व उत्खनन में प्राप्त कुषाण कालीन (एक्सकेवेशन एट हस्तिनापुर बी० बी० लाल फलक 10-11) 'परइयों' को प्राचीनकाल 'दीपक' कहा जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार के दीपक उस समय प्रेक्षागृह के अंदर आलोक व्यवस्था के लिए प्रयोग में आते हों। आधुनिक युग में दक्षिण भारत के पारम्परिक रंगमंडप कूथाम्बलम में रंगमंच पर बड़े-बड़े दीपकों से प्रकाश किया जाता है। दीपकों के झिलमिल प्रकाश में कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है।

ध्वनि-योजना

प्रेक्षागृहों की मुख्य विशेषता है कि स्टेज से उच्चरित स्वर प्रेक्षकों को ठीक प्रकार से सुनाई दे। प्राचीन समय में आधुनिक युग के ध्वनि प्रसारक यंत्र नहीं थे, किन्तु तत्कालीन प्रेक्षक प्रेक्षागृह में बैठकर रंगमंच के कार्यक्रम देखता-सुनता तो था ही, तो उस समय ध्वनि की व्यवस्था कैसे की जाती थी? भरत ने ध्वनि योजना को लक्ष्य में रखकर प्रेक्षागृहों का निर्माण विशेष प्रकार तथा आकार में करने का निर्देश दिया है। एक मध्यम आयताकार प्रेक्षागृह में ध्वनि का सुश्रवण सुविधापूर्वक किया जा सकता है, क्योंकि अत्यंत बड़े प्रेक्षामंडप में बहुत उच्चस्वर से उच्चारण किया गया स्वर रंगमंच के निकटवर्ती प्रेक्षकों के लिए अत्यंत उग्र होने से कष्टदायक होगा तथा दूरवर्ती प्रेक्षकों को सुनाई नहीं देगा। छोटे प्रेक्षागृह में वही उच्चरित स्वर, निकलने और फैलने के आकाश के न होने से, विस्वर होगा। ऐसी स्थिति में मध्यम आकार का प्रेक्षागृह ही भरत नाट्यशास्त्र में सर्वोत्तम माना गया है। इस आकार के प्रेक्षागृह की छत भी इसके धरातल के समान निम्नोन्नत होती है। इसमें रंगमंच-स्थल, प्रेक्षक-स्थल की अपेक्षा संकीर्ण होता है। संकीर्ण रंगमंच से उच्चरित स्वर सामने की ओर दूर तक फैल जाता है! इस बात को 'भोंपू' नामक ध्वनि यंत्र का उदाहरण देकर भली-भांति समझा जा सकता है। भोंपू में बोलने वाले भाग के आगे का भाग पिछले भाग की अपेक्षा पतला और संकरा होता है। इसमें से की गई ध्वनि की तरंगे दूर तक प्रसारित होती हैं। प्राचीन प्रेक्षागृहों का निर्माण भी ध्वनि के फैलने वाले इस गुण को ध्यान में रखकर किया जाता था। इसीलिए आचार्य भरत ने प्रेक्षागृहों को शैलगुहाकार बनाने का निर्देश दिया है। नाट्यशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों से यह भी ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृहों

में ध्वनि-प्रसार तथा ध्वनि की स्पष्टता के लिए द्वारों एवं वातायनों को आमने-सामने नहीं बनाया जाता था। प्रेक्षागृह में द्वारों को संख्या में बहुत कम तथा खिड़कियों को लम्बी एवं छोटी बनाया जाता था। ऐसे प्रेक्षागृहों में ध्वनि स्थिर और गम्भीर होती है। इसके अतिरिक्त ध्वनि को और अधिक दूर तक पहुंचने वाली बनाने के लिए ध्वनि-विस्तरण यंत्र भी प्रयोग में आते थे। नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त 'यंत्र जालगवाक्षम' (ना० शा० 2/78) से यह सम्भावना की जाती है कि यह यंत्र एक प्रकार का ध्वनि विस्तरण करने वाला, आजकल की भांति स्पीकरों जैसा कोई ध्वनि उपकरण था, जो तत्कालीन प्रेक्षागृहों के गवाक्षों एवं जाल (एक प्रकार की छोटी खिड़की) में रंगमंच की ध्वनि को ग्रहण करने के लिए लगा दिया जाता था। प्राचीनकालीन रोम एवं यूनान की रंगशालाओं में 'भोंपू' को ध्वनि-प्रसारक यंत्र के रूप में प्रयोग किया जाता था। प्राचीन भारत के प्रेक्षागृहों में भी सम्भवतः इस प्रकार के ध्वनि-प्रसारक यंत्र प्रयोग में आते थे। क्योंकि इतिहास के अध्ययन के आधार पर ऐसा जाना जाता है कि ईसा से पूर्व के भारतीय एवं योरोपीय प्रेक्षागारों के निर्माण में भिन्नता होते हुए भी कुछ स्थलों पर समानता थी। उक्त तथ्यों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्राचीन प्रेक्षागृह ध्वनिशास्त्र के नियमों के अनुसार बनाए जाते थे। उनमें ध्वनि-योजना का महत्वपूर्ण स्थान था।

(घ) प्रेक्षागृहों की बाह्य एवं आंतरिक साज-सज्जा

प्राचीन प्रेक्षागृह छत, दीवार एवं द्वार-खिड़कियों से युक्त केवल एक सामान्य कक्ष नहीं था। तत्कालीन प्रेक्षागृह के अंदर की दीवारों, स्तम्भों एवं छतों को शिल्पकार एवं चित्रकार विभिन्न शिल्पशैलियों में भली-भांति अलंकृत करते थे। रामायण एवं महाभारत कालीन प्रक्षागृहों की दीवारें संदर चित्रों से सुसज्जित थीं। उनके बड़े-बड़े स्तम्भों पर पशु-पक्षी एवं स्त्री-पुरुषों की सुंदर आकृतियां उत्कीर्ण थीं। प्रेक्षागृह की सुसज्जित एवं अलंकृत करने की यही परम्परा बौद्ध एवं जैन कालीन प्रेक्षागृहों में भी व्यवहृत रही। वस्तुतः मूर्ति या चित्र कला को प्राचीन शिल्प शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को देने वाली कहा गया है। यह कला मंगलकारी एवं शुभ होती है। प्राचीन प्रेक्षागृहों में मूर्ति एवं भित्ति चित्रकला का बाहुल्य प्राप्त होता है। भरत नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह निर्माण के संदर्भ में वर्णित है कि भित्तियों पर प्लास्तर होने के पश्चात् उनकी अच्छी तरह घिसाई करके चिकना करना चाहिए। तदोपरांत उन पर चित्र रचना करें। भित्ति चित्रों के विषयों में मानव जीवन के भोगविलास की सुकोमल भावनाओं

वाले चित्र प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त वनस्पतियों, पशु-पक्षियों की ऐसी विभिन्न मुद्राओं को भी चित्रित किया जाता था, जिससे सांसारिकता का बोध हो। लता-बंध एक प्रकार का ऐसा चित्र था, जिसमें वृक्षों के पास में बंधी सुकुमार लताएं होती थीं। ऐसे चित्रों को लता-बंध की संज्ञा दी जाती थी। अजंता, एलोरा तथा खुजराहों की गुफाओं के भित्तिचित्रों में इस प्रकार के चित्र देखे जा सकते हैं। नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि प्रेक्षागृह की दीवारों पर स्त्री-पुरुष के युग्म चित्र भी चित्रित किए जाएं। ऐसे चित्रों को 'आत्मभोगज' कहा जाता था। ये चित्र 'कामसूत्र' के आधार पर मानव के मनोविनोद हेतु भोगविलासी दृश्यों को प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन प्रेक्षागृहों में नर्तक-नर्तकियों को वाद्य-यंत्र वादकों की मूर्तियों को, विभिन्न मुद्राओं में खड़ी स्त्रियों एवं देवदासियों की मूर्तियों को, दीवारों, स्तम्भों एवं रंगपीठ के चबूतरे पर उत्कीर्ण किया जाता था।

प्राचीन प्रेक्षागृहों में भित्ति चित्रों के अतिरिक्त भवन के अंदर स्तम्भों एवं दीवारों की खूंटियों पर विभिन्न प्रकार की मूर्तियों को टांगने की परम्परा थी। मूर्तिकला की शिल्प शैली को काष्ठ, पत्थर तथा मिट्टी से सम्पन्न किया जाता था। भरतकालीन प्रेक्षागृहों में काष्ठ से मूर्तियां बनाई जाती थीं। कुछ मूर्तियों को 'शालमंजिका' एवं 'शालस्त्री' कहा जाता था। 'शालमंजिका' संदर स्त्रियों की काष्ठमय मूर्ति कहलाती थी। 'शालमंजिका' को कुछ विद्वानों ने आम्रवृक्ष की डाली कहा है। वस्तुतः 'शालमंजिका' एवं 'शालस्त्री' लकड़ी पर उत्कीर्ण एक विशेष प्रकार की पुतलिका होती थीं, जो प्राचीनकालीन प्रेक्षागृहों के स्तम्भों, धारणी धारण एवं नागदंतों पर भवन के अलंकरण के लिए लगाई जाती थीं। इन मूर्तियों की तत्कालीन शिल्पी अपने हाथों से कुशलता पूर्वक रचना करते थे।

प्रेक्षागृह के बाहर की दीवारों को सफेद चूने से पोतकर उस पर भी चित्र-कर्म किया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रेक्षागृह को अंदर तथा बाहर से रंग-बिरंगे फूलों एवं मालाओं से भली-भांति सुसज्जित किया जाता था। रंगपीठ पर बनी वेदिका को वैदूर्य रत्नों से एवं विभिन्न प्रकार के पुष्पों से अलंकृत किया जाता था।

भवनों की साज-सज्जा के विषय के अंतर्गत यवनिका यानी परदों का विशेष महत्व है। यवनिका एक ओर भवन को सुंदर एवं आकर्षक बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी महती उपयोगिता भी होती है। प्राचीन प्रेक्षागृहों में 'यवनिका' का प्रयोग होता था। यह यवनिका स्टेज के सबसे अग्रभाग पर न होकर स्टेज के

मध्य भाग यानी रंगपीठ एवं रंगशीर्ष सीमा रेखा पर टांगी जाती थी। हम देखते हैं कि आजकल के प्रेक्षागृहों में यह स्टेज के अग्रभाग पर टांगी जाती है। स्टेज के अग्रभाग पर यवनिका के टांगने की परम्परा प्राचीन यूनानी रंगमंच से ली गई है। उस समय यूनान की रंगशालाओं में कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के समय इन यवनिकाओं को हटा दिया जाता था। आज भी यही प्रणाली रंगमंच पर व्यवहार में लाई जाती है।

महाभारत में वर्णित प्रेक्षागारों में अनेक यवनिकाएं टांगी गई थीं। ये यवनिकाएं प्रेक्षक-स्थल पर भी थीं। भरत के नाट्यशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भरतकालीन प्रेक्षागृहों में यवनिका प्रेक्षक-स्थल पर नहीं होती थी। ये केवल रंगपीठ पर कक्ष्यविभाग के हेतु टांगी जाती थी। प्राचीनकाल में नाटकों के अभिनय के समय विभिन्न दृश्यों को एक साथ दर्शाने अथवा 'पटी' के पीछे अन्य दृश्यों के संयोजन के लिए यवनिका का महत्व था। यह यवनिका एक प्रकार से भित्ति का कार्य करती थी। प्राचीन संस्कृत नाट्य कृतियों में प्राय: 'आसनस्थ: प्रविशति' पद का प्रयोग मिलता है। इस निर्देश की सार्थकता तभी सम्भव है जब रंगपीठ या स्टेज पर टंगी यवनिका को हटाकर कोई आसनस्थ पात्र मंच पर बैठा-बैठा ही प्रवेश करे। इस तरह के दृश्यों को दर्शाने के लिए प्राय: 'यवनिका' का प्रयोग किया जाता था। यवनिका के लिए संस्कृत नाटकों में 'तिरस्करणी' पद का प्रयोग भी हुआ है। प्राचीन स्थापत्यों के ध्वंसावशेषों जैसे जोगीमारा एवं सीताबेंगा गुफाओं में 'यवनिका' के प्रयोग की पुष्टि होती है। इसमें यवनिका टांगने के लिए दीवार में दोनों ओर गहरे छिद्र हैं।

प्राचीन प्रेक्षागृह के रंगमंच स्थल पर मुख्य यवनिका रंगपीठ एवं रंगशीर्ष के मध्य टांगी जाती थी तथा दो और छोटी यवनिकाएं नेपथ्य एवं रंगशीर्ष के मध्य बने दो द्वारों पर टांगी जाती थीं। ये यवनिकाएं पारदर्शी यानी महीन और बारीक कपड़े की बनी होती थीं। इनका रंग प्राय: सफेद अथवा कोई हल्का रंग होता था, जिन पर रत्नों और मोतियों से सुंदर कारीगरी की जाती थी। ऐसी यवनिका सरकाने या हटाने वाली होती थी। ऊपर से नीचे गिराने वाली यवनिका का प्रयोग कम था।

इस प्रकार प्राचीन प्रेक्षागृहों की साज सज्जा बड़े ही कौशल तथा अभिरुचि के साथ की जाती थी। प्राचीन साहित्य में प्राप्त प्रेक्षागृह के अलंकरण और

सुसज्जा के नियमों से यह पूर्णत: निश्चित हो जाता है कि भारत में प्राचीन प्रेक्षागृह वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध और विकसित थे।

यहां प्राचीन नाट्य एवं वास्तुशास्त्र ग्रंथों के विवेचन से यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में प्रेक्षागृहों के निर्माण से पूर्व एक भवन योजना तैयार की जाती थी जिसके आधार पर भवन-निर्माण कार्य होता था। ईसा से 400 वर्ष पूर्व तथा ईसा बाद 600 वर्ष तक प्रेक्षागृहों के स्वरूपों में परिवर्तन तथा संशोधन होते रहे थे। प्रत्येक युग के प्रेक्षागृहों का अपना वैशिष्ट्य रहा था। प्राचीन प्रेक्षागृहों की वास्तुविधियां एवं शिल्प अपने काल से प्रभावित था। प्राचीन काल में नाट्य-विधा के पूर्ण विकास के समय प्रेक्षागृहों का वास्तु-शिल्प भी अपने चरमोत्कर्ष पर था, क्योंकि नाट्य प्रयोग में एक अति समृद्ध एवं सुनियोजित गृह की आवश्यकता होने लगी थी। ये गृह मंदिरों, राजभवनों से सम्बद्ध थे। कुछ भवन देवदासियों अथवा समृद्ध व्यक्तियों के निजी रूप से भी निर्मित थे। इन प्रेक्षागृहों में डिम, भाण एवं प्रहसन प्रकार के नाटकों का अभिनय किया जाता था। ऐसे नाटकों के लिए बड़े-छोटे नाट्य मंडपों की आवश्यकता होती थी, अतएव तदनुरूप प्रेक्षागृह का निर्माण तत्कालीन वास्तुविदों के द्वारा किया जाता था। इन प्रेक्षागृहों में धार्मिक-प्रचार-हेतु तथा किन्हीं विशेष अवसरों पर नृत्य, संगीत एवं नाट्याभिनय के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। उस समय ये प्रेक्षागृह ही जनता के मनोरंजन-स्थल थे।

अध्याय 4

भारत में निर्मित बीसवीं सदी के कुछ प्रेक्षागृह

पिछले अध्याय में विवेचित प्राचीन प्रेक्षागृहों के संदर्भों से यह पूर्णतः ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन भारत में प्रेक्षागृहों का निर्माण शास्त्रीय विधियों के अनुसार होता था। इन प्राचीन प्रेक्षागृहों का स्वरूप अत्यधिक समृद्ध और सुनियोजित होता था। प्राचीन कालीन प्रेक्षागृहों की निर्माण विधि के अध्ययन से यह सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या आधुनिक काल में प्रेक्षागृहों के लिए इन प्राचीन प्रेक्षागृहों की निर्माण पद्धति अनुसृत है? इस जिज्ञासा के समाधान के लिए एक संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि सातवीं शती के पश्चात् शनैः-शनैः प्राचीन प्रेक्षागृहों के स्वरूपों का ह्रास होने लगा था। मध्यकाल में आक्रमण-कारियों के निरंतर आक्रमण करते रहने से यह प्रेक्षागृह केवल नृत्यशालाओं तक ही सीमित रह गए। ये नृत्यशालाएं प्रायः राजभवन से सम्बद्ध थीं। उनका स्वरूप भी एक सामान्य कक्ष जैसा ही रहा। तेरहवीं शती से पुनः रंगशाला या प्रेक्षागृहों की ओर जन सामान्य का ध्यान गया क्योंकि उनकी रूचि प्राचीन नाटकों की ओर होने लगी थी। ये नाटक संस्कृत में लिखे गए थे। इन नाटकों का अप-भ्रंश में अनुवाद करके इनका नाट्य-प्रयोग आरम्भ किया गया। अट्ठारहवीं शती में योरोपियनों के आगमन के पश्चात् मनोरंजन के नए-नए साधनों के आगमन से मनोरंजन के नए-नए स्रोतों एवं साधनों का विकास हुआ। फलस्वरूप उन्होंने भारत के प्राचीन प्रेक्षागृहों के स्त्रोतों के आधार पर योरोपियन शैली में प्रेक्षागृह का पुनः प्रारम्भिक स्वरूप निर्धारित किया, जिसे उन्नीसवीं सदी के मध्य साकार रूप में परिणत किया। प्रेक्षागृहों के निर्माण के क्षेत्र में पुनः विकास होने लगा। वर्तमान युग में इस विकास के फलस्वरूप प्रेक्षागृहों के दो रूप हमारे समक्ष उभर कर आए। उनमें से पहला सजीव अभिनय के लिए रंगशाला है तथा दूसरा निर्जीव चित्रों के प्रदर्शन के लिए छविगृह (सिनेमाघर) है। इन दोनों में मुख्य भिन्नता

यह है कि सजीव चित्रों के लिए प्रयुक्त रंगशाला में रंगमंच-स्थल एवं प्रेक्षक-स्थल को समान रूप से महत्व दिया जाता है, किंतु निर्जीव चित्रों के प्रदर्शन के लिए छविगृहों में प्रायः प्रेक्षक-स्थल को महत्व दिया जाता है, क्योंकि रंगमंच के स्थान पर पर्दे को दीवार पर टांगने की व्यवस्था की जाती है। यह पर्दा ही एक प्रकार से रंगमंच का पर्याय हो जाता है, क्योंकि प्रोजेक्टर के द्वारा विद्युत यंत्रों से फोटो को पर्दे पर दिखाया जाता है। इन छविगृहों का निर्माण व्यवसाय की दृष्टि से होता है। अतएव इनमें अधिक-से-अधिक प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था की जाती है। इसके विपरीत रंगशालाएं या प्रेक्षागृह बड़े-बड़े उद्योगपतियों या सरकार के द्वारा बनवाए जाते हैं। ये रंगशालाएं विश्वविद्यालयों, कालिजों के प्रांगण में या स्वतंत्र प्रेक्षागृह के रूप में किन्हीं सार्वजनिक स्थलों पर बनती हैं। इन भवनों में नाटक अभिनय, विचार गोष्ठी, कवि सम्मेलन आदि विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक या अन्य प्रकार के मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रेक्षागृह का ऐसा स्वरूप भी आज प्राप्त होता है, वो अति विशाल होता है, इसे आजकल स्टेडियम के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त सरकस के लिए तम्बू से बना अस्थायी प्रेक्षागार मल्लयुद्ध, रासलीला, भवाई, रामलीला आदि के कार्यक्रमों की प्रस्तुत करने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। ऐसे प्रेक्षागृहों की संरचना बांस, बल्लियों तख्तों आदि के द्वारा प्रेक्षागृह निर्माण के मूल-वास्तु सिद्धांतों पर अस्थायी रूप से की जाती है।

आधुनिक प्रेक्षागृहों एवं छविगृहों के सर्वेक्षण तथा प्रेक्षागृह निर्माण के विशेषज्ञ वास्तुविदों से परामर्श के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक प्रेक्षागृहों एवं छविगृहों का निर्माण प्राचीन प्रेक्षागृहों की निर्माण-शैली के मूल सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। विज्ञान के विकास के साथ-साथ इसके भवन में कुछ तकनीकों में परिवर्तन और परिवर्द्धन हुआ है। अतएव, आधुनिक भारत में निर्मित ऐसे कुछ विभिन्न स्वरूपों का संक्षिप्त परिचय देना यहां समीचीन है। ऐसे कुछ प्रेक्षागृहों का वर्णन निम्नलिखित है।

स्टेडियम

खेलकूद, प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं प्रतियोगिता आदि के लिए प्रयुक्त होने वाले स्थल को आजकल 'स्टेडियम' की संज्ञा दी जाती है। ये स्टेडियम गोलाकार या अंडाकर होते हैं : कई मंचों एवं सैकड़ों प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था से युक्त ये अति

विशाल मुक्ताकाशी एवं आच्छादित दोनों ही प्रकार के बनाए जाते हैं। पीछे हम बता चुके हैं कि महाभारत काव्य में ऐसे विशाल प्रेक्षागारों का संकेत मिलता है, जिन्हें 'रंगवाट' कहा गया था। इसके मध्य में रंगभूमि या रंगस्थल होता है, जो प्रेक्षक-स्थल से नीचा और गोल होता है। आजकल किन्हीं बड़े स्टेडियमों में रंगस्थल पर कई-कई मंच होते हैं, जिन पर क्रम से विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते रहते हैं। इस प्रकार के प्रेक्षागृह में प्रेक्षक-स्थल मंच के तीन ओर सोपानाकृति में बना होता है, जिन पर दर्शकों के लिए कुर्सियां या पत्थर या तख्तों की सीढ़ियां होती हैं। ऐसे कुछ प्रक्षागारों में कुछ ऐसे कक्षों की व्यवस्था भी की जाती है, जिनमें अतिथि ठहर सकें। बड़े स्टेडियमों में जलपान कक्षों की व्यवस्था भी होती है। भारत में स्टेडियमों का निर्माण प्राय: देश की सरकार द्वारा कराया गया है। इनके निर्माण में काफी बड़े क्षेत्र में फैली भूमि के साथ-साथ महती धन की बहुत आवश्यकता होती है। इसीलिए इनकी संख्या कम है। भारत में बने अनेक स्टेडियमों में आजकल दिल्ली में निर्मित इंदिरा गांधी इंडोर (आच्छादित) स्टेडियम प्रमुख है। यह दिल्ली में इन्द्रप्रस्थ मार्ग पर स्थित है। अतिविशाल इस स्टेडियम में 25,000 प्रेक्षकों की आसन व्यवस्था है। इसके मध्य में विशाल वृत्ताकार रंगमंच स्थल है, जिस पर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। इसकी छत गुम्बदाकार है। तथा इसके निर्माण में एंगिल आयरन का विशेष प्रयोग किया गया है। इस स्टेडियम में एक प्रेक्षाकक्ष भी है, जिसमें रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। पश्चिमी एवं भारत के इंजीनियरों एवं वास्तुविदों द्वारा बनाया गया यह स्टेडियम प्रेक्षागृह के एक विशेष स्वरूप का उल्लेखनीय उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त सरकस, मल्लयुद्ध, रासलीला एवं रामलीला के लिए प्रयुक्त प्रक्षागार भी स्टेडियम की भांति होते हैं। ये दर्शकों की संख्या के अनुसार छोटे या बड़े, अस्थायी रूप से बनाए जाते हैं। सरकस के लिए प्रयुक्त तम्बू वाले अस्थाई प्रेक्षामंडप में रंगभूमि यानी स्टेज अपेक्षाकृत बड़ा होता है। यह इसलिए होता है कि इन पर भयानक जंगली जानवरों की सीखचे बंद गाड़ियों एवं हाथी, घोड़े आदि जानवरों को तरह-तरह के खेल दिखाने के लिए लाया जाता है। यह मंच भूमि के धरातल से सामान्यत: तीन फुट तक ऊंचा और गोल होता है। प्रेक्षकों की प्रथम पंक्ति एवं मंच में लगभग दस फुट तक अंतर होता है। प्रक्षकों की प्रथम पंक्ति की ऊंचाई, मंच की ऊंचाई के बराबर होती है तथा अन्य पंक्तियां क्रमश: पीछे की

ओर ऊंची होती जाती हैं। इसमें प्रेक्षकों के लिए मुख्यतः चार द्वार होते हैं, जिनमें दो प्रवेश तथा दो निर्गमन यानी बाहर जाने के लिए होते हैं। विशाल तम्बू से पटी हुई इसकी छत मध्य में ऊंची तथा चारों ओर से नीची होती है। मल्लयुद्ध, प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन के लिए प्रयुक्त होने वाले स्थल को 'अखाड़ा' भी कहा जाता है। स्टेडियमनुमा वृत्ताकार यह स्थल भी प्रेक्षामंडप का ही एक स्वरूप होता है। इसमें भी प्रेक्षकों की उन सभी सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है, जिससे वे सुखपूर्वक मल्लयुद्धक्रीड़ा का आनंद ले सकें। यह प्रायः गोल होता है। बीच में ही मिट्टी से भरा हुआ एक गोल चबूतरा ही मंच होता है। इसके चारों ओर दर्शक बैठते हैं। आजकल इस प्रकार के कार्यक्रम की प्रस्तुति प्रायः स्टेडियम में कर ली जाती है। यदि इस स्थल का निर्माण पृथक् रूप से आवश्यक समझा जाता है तब इसका निर्माण मूलरूप से स्टेडियम के निर्माण-सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। किन्तु यह अति विशाल नहीं होता है।

रासलीला के लिए प्रयुक्त स्थल गोल तथा छोटा होता है। इसकी व्यवस्था आवश्यकतानुसार किन्हीं उपयुक्त स्थलों पर अस्थायी रूप से कर ली जाती है। मंदिरों के प्रांगण से लेकर मैदानों तक में इसके मुक्ताकाशी प्रेक्षामंडप बनाए जाते हैं। मथुरा, वृंदावन में कुछ ऐसे रासस्थल हैं, जो स्थायी रूप से निर्मित हैं। बड़ी-बड़ी धार्मिक यात्राओं के काल में भी इनकी व्यवस्था होती है। इसके लिए मंच और प्रेक्षक-स्थल की योजना एक ही स्तर की सामान्य भूमि पर की जाती है। मध्य में रासलीला का आनंद लेते हुए प्रेक्षक चारों ओर बैठे रहते हैं। रामलीला के लिए प्रायः दो प्रकार के प्रेक्षामंडप की आवश्यकता होती है। रामायण महाकाव्य पर आधारित कुछ दृश्यों को आयताकार भवन के प्रेक्षागृह में दर्शाया जाता है तथा वन एवं युद्ध के कुछ दृश्यों को प्रायः खुले आकाश के नीचे अंडाकार स्थल पर दर्शाने की परम्परा है। ऐसे स्थल पर कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने वाले पात्र रथों पर या पैदल ही चारों ओर बैठे दर्शकों के सामने से नाटक की भूमिका प्रस्तुत करते हुए चलते जाते हैं और दर्शक अपने-अपने स्थानों पर आसनस्थ होते हुए रामलीला का आनंद लेते हैं। रामलीला के लिए प्रयुक्त कुछ अस्थायी स्थल एवं स्थायी भवन दिल्ली एवं बनारस के नगरों में हैं।

भोपाल के भारत भवन में निर्मित प्रेक्षागृह

मध्यप्रदेश के भोपाल नगर में भारत भवन के परिसर में चार प्रेक्षागृह हैं। इनमें से तीन खुली रंगशालाएं हैं तथा एक कक्ष के अंदर है। बहिरंग मुक्ताकाशी

प्रेक्षागार का परिमाण 54 × 54 फुट है, यह वर्गाकार है। इसकी पृष्ठभूमि में भोपाल का बड़ा तालाब और दूर तक ओझल होती हुई पहाड़ियां हैं। इसमें 500 दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है। दर्शकों के लिए आसन-व्यवस्था सीढ़ीनुमा स्थान पर की जाती है, ये सीढ़ियां क्रमशः पीछे की ओर ऊंची होती हुई हैं। दूसरी अभिरंग रंगशाला का माप परिमाण 30 × 28 फुट है। इसमें 80 दर्शकों के बैठने की आसन-व्यवस्था है। पूर्वरंग ऐसी रंगशाला है, जिसमें रंगमंडल नामक नाट्य संस्था अपने पात्रों को नाट्य प्रयोग का प्रशिक्षण देती है। इन सभी रंगशालाओं के लिए 10 ग्रीनरूम और खुला हाल उपलब्ध है। इनमें स्टेज द्विभूमिक नहीं है। प्रेक्षक स्थल की स्टेज से दूरी दो फुट है। स्टेज से पहली पंक्ति की ऊंचाई एक फुट है। अभिरंग में दो द्वार और पांच खिड़कियां है। इसके अतिरिक्त चौथी रंगशाला वातानुकूलित है। इसका परिमाण 37 × 37 फुट है। इस आच्छादित रंगशाला में 300 प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था सीढ़ियों पर की गई है। सीढ़ियों की परस्पर ऊंचाई लगभग सात इंच है। सीढ़ियों की चौड़ाई दो फुट है। इन पर कुर्सियां डालकर प्रेक्षकों की आसन-व्यवस्था की जाती है। इसमें चार दरवाजे है। इस वर्गाकार रंगशाला के एक कोण पर अग्र विस्तारित मंच है। रंगशाला में नाट्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विभिन्न कार्यक्रम भी दिखाए जाते हैं। इसमें कवि सम्मेलन आदि काव्य सम्बंधी चर्चाओं का आयोजन भी किया जाता है। इन चारों प्रेक्षागृहों में भोपाल की रंगमंडल नामक सांस्कृतिक संस्था के तत्वावधान में अनेक रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन होता रहता है। भारत भवन में अपने ढंग से निर्मित ये प्रेक्षागृह सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं।

भालेराव प्रेक्षागृह, बम्बई

यह प्रेक्षागृह मुम्बई मराठी साहित्य संघ मंदिर के भूमिखंड में स्थित है। इसमें रंगमंच का परिमाण 51 × 51 फुट है। प्रेक्षक-स्थल की लम्बाई-चौड़ाई इससे दुगनी है। प्रेक्षक-स्थल पंखे के आकार का है। प्रेक्षक-स्थल पर चार द्वार हैं। मंच एवं प्रेक्षक की प्रथम पंक्ति की दूरी लगभग आठ फुट है। प्रेक्षक-स्थल द्विमंजिला है। दूसरी मंजिल पर तोरण कक्ष तथा बालकनी है। बालकनी एवं बालकनी के नीचे प्रेक्षागार में 850 दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है। इसकी छत प्रेक्षागृह निर्माण सिद्धान्तों के अनुसार समान होकर विषम तल वाली है। रंगमंच की छत अपेक्षाकृत ऊंची है। इस प्रेक्षागृह की अंदर की दीवारों पर चित्र अंकित हैं। प्रेक्षागार में रंगमंच के नीचे 10 फुट गहरा तालगृह है। इसके दोनों ओर ग्रीनरूम हैं।

रंगमंच के चबूतरे में कच्चा भराव है ऊपर से लकड़ी के तख्तों से पटा हुआ है।

इस प्रेक्षागार की चौथी मंजिल पर पूर्वाभ्यास लिए एक पृथक कक्ष है, जिसमें लघु मंच है।

नीचे के प्रेक्षागार में नाटक, संगीत, नृत्य के अतिरिक्त कवि सम्मेलन, प्रवचन, धार्मिक चर्चा आदि के अन्य प्रकार के विभिन्न कार्यक्रमों को प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रेक्षागार बम्बई में 1964 में बना है।

रवीन्द्रालय प्रेक्षागृह, लखनऊ

उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के द्वारा 1964 में निर्मित यह प्रेक्षागृह मध्यम आकार का है। इस प्रेक्षागृह में प्रेक्षक-स्थल एवं रंगमंच-स्थल आयताकार है। रंग-मंच पर नेपथ्यस्थल में चार शृंगारकक्ष हैं। रंगमंच 90 फुट गहरा और 80 फुट चौड़ा है। यह प्रेक्षक-स्थल की ओर कुछ मंचाग्र के रूप में आगे को निकला हुआ है। मंचाग्र के पीछे स्वचालित यवनिका है, जो आवश्यकतानुसार दो भागों में बंटकर दाएं-बाएं सरकती है।

रवीन्द्रालय का प्रेक्षागृह घोड़े की नाल जैसी आकृति वाला एवं ढालू होती हुई भूमि पर स्थित हैं। कुर्सियों की कुछ पंक्तियों के मध्य में, आने-जाने के लिए, सीढ़ियां बनी हैं। प्रेक्षक-स्थल की पार्श्व की दीवारों पर सुंदर-संदर चित्र चित्रित हैं। रवीन्द्रालय प्रेक्षागृह वातानुकूलित है। इसमें त्रिपदाधारी तीव्र प्रकाश (फ्लड लाइट) लघु-तीव्र प्रकाश (बेबी फ्लड) तथा बिंदु प्रकाश आदि की व्यवस्था है। इनका प्रयोग रंगदीपन के लिए किया जाता है। प्रेक्षागृह श्रुतिसिद्ध है।

इन सबके अतिरिक्त इस प्रेक्षागृह में प्रसाधन कक्ष, स्नानागार, जलपान कक्ष एवं टिकट घर की व्यवस्था है। इस प्रेक्षागृह में नृत्य, संगीत, नाटक आदि रंगारंग कार्यक्रमों के अतिरिक्त किसी माननीय व्यक्ति के स्वागत या अन्य इसी प्रकार के कार्गक्रम समय-समय पर नागरिकों के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रतिरक्षा मंडप, दिल्ली

यह प्रेक्षागृह नई दिल्ली के प्रदर्शनी मैदान के पार्श्व में स्थित है। इस महानगर के मध्यमाकार प्रेक्षागृहों में इसका नाम उल्लेखनीय है। 1958 की प्रदर्शिनी के अवसर पर इसका निर्माण हुआ था। सम्पूर्ण प्रेक्षागृह का माप-परिमाण 120 × 40 फुट है। इसके अंदर निश्चित परिमाण के आधार पर रंगमंच-स्थल एवं प्रेक्षक-

स्थल बनाए गए हैं। प्रेक्षक-स्थल की लम्बाई-चौड़ाई 40 × 30 फुट है। इसके पीछे की ओर छह श्रृंगार कक्ष एवं दो स्नानागार हैं। रंगमंच गोलाई के साथ प्रेक्षक-स्थल की ओर को निकला हुआ है। प्रेक्षक-स्थल की प्रथम पंक्ति एवं रंगमंच के अग्रभाग की दूरी सात फुट है। इसका प्रेक्षक-स्थल आयताकार है। इसमें छह द्वार हैं। लगभग 600 प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था है। इसकी छत एवं दीवार प्रेक्षागृह के वास्तुशिल्प सिद्धांतों पर निर्मित हैं। यह वातानुकूलित एवं श्रुतिसिद्ध है।

इस प्रेक्षागृह में रंगारंग कार्यक्रमों से लेकर स्वागत समारोह, विचार-गोष्ठी आदि जैसे कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं।

शहीद भवन प्रेक्षागृह, जबलपुर

यह वृत्ताकार प्रेक्षागृह जबलपुर में हिंदी के प्रसिद्ध लेखक एवं नाटककार सेठ गोविंददास द्वारा निर्मित है। इसका निर्माण 1961 में परिक्रामी रंगमंच के लिए किया था। इस प्रेक्षागृह के मध्य में गोलाकृति के अंदर प्रेक्षकों के आसन की व्यवस्था आयताकार ढंग से की गई है। इसमें 500 प्रेक्षकों के बैठने के लिए कुर्सियां हैं। प्रेक्षक-स्थल के चारों ओर गोलाकार में वीथिकाएं हैं। इस प्रेक्षक-स्थल में तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। एक दिशा में रंगमंच बना है। रंगमंच गोल है। इसका व्यास 20 फुट है। इसके दोनों ओर ग्रीन रूम और स्नानागार है। यह आच्छादित है। प्रेक्षागृह श्रुतिसिद्ध है एवं इसमें प्रकाश योजना की व्यवस्था है। इस प्रेक्षागृह में प्रायः नृत्य, नाटक आदि का प्रदर्शन होता रहता है।

बिड़ला मातुश्री सभागार, बम्बई

बिड़ला उद्योगपति द्वारा निर्मित यह प्रेक्षागृह बम्बई के प्रेक्षागृहों में प्रमुख है। आयत प्रकार का यह प्रेक्षागृह 1168 प्रक्षकों की आसन व्यवस्था वाला बड़ा प्रेक्षागृह है। इसमें बालकनी नहीं है। इसके मंच की चौड़ाई-लम्बाई 40 × 30 फुट है। इसके मध्य भाग में 28 फुट व्यास के परिक्रामी मंच की व्यवस्था है। मंच के एक ओर ग्रीन रूम है तथा दूसरी ओर एक लोहे का सरकाने योग्य द्वार है जिसमें आवश्यकतानुसार गुफा का दृश्य दिखाया जा सकता है। यह वातानुकूलित एवं श्रुतिसिद्ध है। इस सभागार में पाद प्रकाश, शीर्ष प्रकाश, तीव्र प्रकाश और प्रेक्षागार प्रक्षिप्त प्रकाश (फ्रंट आफ दि हाउस लाइट) की व्यवस्था है।

मावलंकर भवन, दिल्ली

यह सभाभवन लोकसभा के अध्यक्ष स्व० जी० वी० मावलंकर की स्मृति में 1967 में बनाया गया था। इसका निर्माण आवास मंत्रालय ने किया था। यह वातानुकूलित है। बालकनीयुक्त इस प्रेक्षागार में 712 प्रेक्षकों के बैठने की सुव्यवस्था है। बैठने की व्यवस्था तीन पंक्ति समूहों में की गई है। इनके बीच में आने-जाने के लिए वीथिकायें हैं। इसकी छत विषम स्तर वाली है। रंगमंच की छत प्रेक्षक-स्थल की छत से कुछ नीची है। प्रेक्षागार में प्रवेश के लिए चार द्वार हैं। दो द्वार तोरण-कक्ष की ओर हैं, और दो प्रेक्षक-स्थल के सबसे आगे वाले भाग के बाएं-दाएं हैं। भवन के रंगमंच स्थल की लम्बाई-चौड़ाई 42 × 28 फुट है। रंगदीप्ति के सभी आधुनिक उपकरणों की व्यवस्था है। इस प्रेक्षागार में सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों को समय-समय पर प्रस्तुत किया जाता है।

रुड़की विश्वविद्यालय का प्रेक्षागृह

रुड़की इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय का प्रेक्षागृह अपने प्रकार एवं आकार के लिए एशिया में प्रसिद्ध है। यह उन्नीसवीं शताब्दी में बना हुआ है। इसका प्राचीन नाम 'साउथ वेस्ट पेसिफिक हेंगर' है। यह चापाकार (आर्कशेप) है। भवन में प्रवेश करने पर यह गुफा या सुरंग की भांति लगता है। इसकी लम्बाई 202 फुट तथा चौड़ाई 42 फुट है। इसमें रंगमंच स्थल का परिमाण 84 × 35 फुट है। नेपथ्य गृह (ग्रीन रूम) का परिमाण 16 × 26 फुट है। इस प्रेक्षागार की छत के मध्य की ऊंचाई 34 फुट है। इस प्रेक्षागृह की छत एवं दीवारों की विशेषता यह है कि भवन की छत के मध्य से छत की नीचाई पार्श्व भित्तियों की ओर होती चली गई है, जहां इन भित्तियों की ऊंचाई प्रवेश द्वार के बराबर यानी कि आठ फुट रह गई है। इस प्रेक्षागार में एक मुख्य बड़ा प्रवेश द्वार सामने की ओर है तथा चार-चार द्वार भवन के दोनों ओर हैं। इसकी छत के आंतरिक भाग को प्लाइवुड से बनाया गया है। इसके ऊपरी भाग को एंगल आयरन एवं टीन से पाटा गया है। प्रेक्षागार की अंदर की भित्तियों पर एस्बेसटस टाइल्स लगाई गई हैं। यह प्रेक्षागृह में इसलिए लगाई जाती हैं, जिससे ध्वनि में गूंज न हो। ध्वनि गम्भीर होकर श्रवण योग्य बन सकें। इसमें प्रेक्षक-स्थल के लिए भूमि रंगमंच

की ओर से पीछे की ओर क्रमशः थोड़ी ऊंची होती हुई है। उसी पर कुर्सियों का प्रबंध है। यह श्रुतिसिद्ध है।

इस प्रेक्षागृह में रंगारंग कार्यक्रमों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह का आयोजन होता है।

मेरठ विश्वविद्यालय का प्रेक्षागृह

मेरठ विश्वविद्यालय के प्रांगण में निर्मित यह प्रेक्षागृह आयताकार है। इसकी लम्बाई 160 फुट तथा चौड़ाई 103 फुट है। इसमें रंगमंच-स्थल के अग्रभाग का परिमाण 57 फुट है जो पीछे जाकर 37 फुट हो गया है। इस रंगमंच की लम्बाई (गहराई) 26 फुट है। इसका अग्रभाग चौड़ा तथा पृष्ठ भाग कम चौड़ा है। रंगमंच-स्थल को तीन फुट ऊंचा करने के लिए मिट्टी और कंकरियों के द्वारा कच्चा भराव किया गया है और इससे ऊपर का भाग तीन इंच मोटी लकड़ी के तख्तों से बनाया गया है। रंगमंच पर ध्वनि-विस्तारक यंत्रों को फर्श पर लगाया गया है। रंगमंच की छत प्रेक्षक-स्थल से नीची है। प्रेक्षक-स्थल की छत से रंगमंच की छत के नीची होने का एक विशेष तकनीकी कारण है, इस प्रकार के स्थल से उच्चरित स्वर प्रेक्षक-स्थल की भित्तियों से टकरा कर वापिस रंगमंच स्थल पर नहीं आता है। रंगमंच की दीवारों पर प्लाइवुड और एस्बेसटस टाइल्स का प्रयोग किया गया है। रंगमंच के एक ओर पार्श्व में ग्रीनरूम है। इसकी ऊपर की मंजिल में रंगमंच पर प्रकाश एवं ध्वनि की व्यवस्था की गई है।

इस प्रेक्षागृह के प्रेक्षक-स्थल के लिए प्रेक्षागृह निर्माण के सामान्य नियमों को व्यवहार में लाया गया है। इसका प्रेक्षक-स्थल पंखे के आकार का है। इसका धरातल ढालुवां है और इसमें प्रेक्षकों की आसन-व्यवस्था सोपानाकृति है। इसमें तीन-तीन फुट चौड़ी सीढ़ियों की एक-दूसरे से ऊंचाई का अंतर छह इंच है। यह प्रेक्षक-स्थल द्विमंजिल है। इसमें नीचे की मंजिल पर 1100 तथा ऊपर की मंजिल पर 200 प्रेक्षकों की आसन-व्यवस्था है। प्रेक्षक-स्थल की छत इसके धरातल की भांति ढालुवां है। यह छत मुख्य जन प्रवेश के द्वार से ऊंची होती हुई रंगमंच-स्थल की ओर क्रमशः नीची होती गई है। छत-निर्माण में ग्लासवूल, लोहे की बारीक जाली, प्लास्टर आफ पेरिस की डिजाइनदार टाइल्स, लकड़ी के फलक आदि सामग्री का प्रयोग किया गया है। इसकी छत पर आयरन एंगल के फ्रेम लगाए गए हैं। तदनंतर उन फ्रेमों को टीन की चादरों से ढंक दिया गया है। छत

के अंदर के भाग को प्लास्टर आफ पेरिस की टाइल्स से अलंकृत किया गया है। लोहे की चादर वाली छत तथा प्लास्टर की टाइल्स की फाल्स छत में मध्य भाग का अंतर सात फुट है। इस प्रेक्षागृह की दीवारें प्रेक्षागृह के धरातल से 16 फुट ऊंची होती हुई मुख्य द्वार पर ढलाव के साथ आठ फुट हो गई हैं। दीवारों पर अंदर की ओर कच्चे प्लास्टर की टाइल्स लगाई हैं। प्रेक्षागृह में पक्का प्लास्तर इसलिए नहीं किया जाता है क्योंकि पक्के प्लास्तर वाले भवन में रंगमंच के स्वर में गूंज का दोष आ जाता है। इस प्रेक्षागृह का मुख्य द्वार गुफा के प्रवेश द्वार जैसा लगता है।

इनके अतिरिक्त इस प्रेक्षागृह के निर्माण में आधुनिक वास्तुशिल्पकाल के नए तकनीकी नियमों का प्रतिपादन हुआ है।

छविगृह या सिनेमाहाल

आजकल नगरों, कस्बों एवं महानगरों में इस प्रकार के प्रेक्षागृहों का बहुत प्रचलन है। ये प्रेक्षागृह पूर्णरूपेण व्यावसायिक दृष्टि से बनाए जाते हैं। इसीलिए नगरों के मध्य में इन्हें अधिकांशतः बनाया जाता है। आजकल नगरों में भूमि का मूल्य अधिक होने से नगरों के बाहर इन्हें बनाया जाता है। इस विशाल गृह के निर्माण में प्रेक्षागृह-निर्माण के सिद्धांतों को सामान्यतः व्यवहार में लाया जाता है। सिनेमाहाल का प्रेक्षागृह अन्य प्रेक्षागृहों से थोड़ा भिन्न होता है। इसमें रंगमंच-स्थल के स्थान पर पर्दे को इस भांति टांगा जाता है कि प्रेक्षक-स्थल में बैठे सभी प्रेक्षकों को पर्दे के दृश्य बिना व्यवधान तथा बिना किसी कष्ट के सुख-पूर्वक दीख सकें। वस्तुतः ऐसे प्रेक्षागृह को निर्जीव रंगमंच वाला प्रेक्षागृह कहा जाता है।

ये प्रेक्षागृह प्रायः आयताकार या त्रिकोणाकार होते हैं। लगभग ऐसे सभी प्रेक्षागृह दुमंजिले होते हैं। इसके भवन का परिमाण सामान्यतः 96 × 48 फुट के लगभग होता है, लेकिन भूमि के बड़ी या छोटी होने पर इसकी लम्बाई-चौड़ाई कम या अधिक भी होती है। इस स्थिति में प्रेक्षागृह वर्गाकार भी होता है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह में रंगमंच-स्थल के स्थान पर चलचित्र के प्रदर्शन के लिए पर्दे की व्यवस्था की जाती है। इन पर्दों का माप परिमाण 40 × 25 फुट से लेकर 60 × 40 फुट तक होता है। पर्दे के पीछे ध्वनि प्रसारक यंत्र यानी कि स्पीकर्स लगे होते हैं। पर्दे को दीवार के सहारे बिल्कुल लटका हुआ न टांग कर

कुछ उभरा हुआ-सा लटकाया जाता है। पर्दे से प्रेक्षक-स्थल की प्रथम पंक्ति का अंतर दस फुट से बारह फुट तक होता है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह की छत एवं दीवारें सामान्य प्रेक्षागृह जैसी होती हैं। प्रेक्षक-स्थल में प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था सीढ़ियों या ढालू भूमि पर रखी कुर्सियों पर होती है। इस प्रकार के प्रेक्षागृह की दीवारों को ईंटों से बनाकर उस पर एक इंच का प्लास्तर किया जाता है। इस प्लास्तर का मिश्रण भूसा, गोबर, प्लास्टर आफ पेरिस आदि से बनाया जाता है। इस भांति के प्लास्तर वाले भवन में स्पीकरों की गूंज नहीं होती। ध्वनि यंत्रों की अतिरिक्त गूंज को ये दीवारें अपने में समाहित कर लेती हैं। आजकल नई तकनीकों द्वारा इस प्रकार के मिश्रण से बनी टाइल्स कारखाने से बनकर आती हैं। ये टाइल्स दीवारों पर चिपका दी जाती हैं। सिनेमाहाल के अंदर की दीवारों पर नर्तकियां, अप्सराओं एवं विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों, वाद्य वादकों को चित्रित किया जाता है। ये प्रेक्षागृह रंगमंच-स्थल के न होने से अपेक्षाकृत विशाल लगते हैं। इनमें सात से ग्यारह द्वारों की व्यवस्था की जाती है। प्रेक्षक-स्थल का भाग टिकट के मूल्यों के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होता है। इसमें सबसे कम मूल्य वाली प्रेक्षक पंक्ति सबसे आगे तथा सबसे अधिक मूल्य वाली सबसे पीछे होती है।

प्रेक्षागृह के बाहर भवन के अंदर ही टिकट घर, प्रसाधन कक्ष, कैंटीन एवं दर्शक दीर्घा के लिए कई छोटे-बड़े कक्ष एवं बड़ा बरामदा बनाया जाता है। सिनेमागृह के बाह्य भाग को विशेषतः बहुत सुंदर ढंग से अलंकृत एवं सुसज्जित किया जाता है। सिनेमागृह को चलचित्रशाला की संज्ञा भी दी जाती है।

इस प्रकार आधुनिक युग में बने प्रेक्षागृह के विभिन्न स्वरूपों के सर्वेक्षण एवं निरीक्षण से ज्ञात होता है कि प्राचीन एवं आधुनिक प्रेक्षागृह के निर्माण सिद्धांतों में मौलिक रूप से कोई विशेष अंतर नहीं है। इन सब प्रेक्षागृहों में दर्शकों का स्थान महत्वपूर्ण है। एतदर्थ विशालकक्ष की अपेक्षा होती है। आज भी प्रेक्षागृहों की छत, दीवारें, प्रेक्षक-स्थल, रंगमंच-स्थल आदि का निर्माण प्राचीन प्रेक्षागृह निर्माण शैली के अनुसार ही होता है। इन प्रेक्षगृहों को आज भी प्रेक्षकों की सुख सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए निश्चित परिमाण वाला बनाया जाता है। इनमें प्रेक्षक-स्थल पीछे की ओर से ऊंचा तथा रंगमंच की ओर क्रमशः नीचा होता जाता है। ऐसा करने के लिए इनमें तीन या ढाई फुट चौड़ी सीढ़ियां बनाई जाती हैं। रंगमंच-स्थल की लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई निश्चित है, जो प्राचीन

प्रेक्षागृहों के रंगमंच से साम्यता रखती है। कक्ष के अंदर ध्वनि की गूंज न हो, इसीलिए प्रेक्षागृह की अंदर की छत सामान्य कक्ष की भांति समतल न होकर विषम स्तर वाली बनाई जाती है। दीवारों एवं छतों पर कच्चे प्लास्तर की सुंदर और सुसज्जित टाइल्स लगाई जाती हैं। द्वार और खिड़कियों की संख्या बहुत कम होती है। आज, विज्ञान के इस युग में यह दूसरी बात है कि नई तकनीकों से ध्वनि प्रसारक यंत्रों द्वारा स्वर को स्पष्ट एवं श्रवण योग्य बना दिया गया है। विद्युत द्वारा प्रकाश की व्यवस्था से इन आधुनिक प्रेक्षागृहों में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया है। विद्युत यंत्रों द्वारा भवन को मौसम के अनुसार वातानुकूलित कर देने से प्रेक्षकों को सर्दी, गर्मी या बरसात का सामना प्राचीन प्रेक्षकों की भांति नहीं करना पड़ता है। आधुनिक युग में ये प्रेक्षागृह या छविगृह पूर्णतः व्यवसाय की दृष्टि से बनाए जाते हैं, अतः ये अर्थोपार्जन में विशेष स्थान रखते हैं, जबकि प्राचीन काल में प्रेक्षागृह केवल मनोरंजन या ज्ञानवर्द्धन के स्थल के रूप में बनाए जाते थे। इनमें कुछ सार्वजनिक प्रेक्षास्थल नृत्य, संगीत, नाटक की कला के प्रशिक्षण केन्द्र भी थे। ऐसे प्रेक्षास्थल मंदिरों के परिसर में या गुफाओं में थे।

उपसंहार

प्राचीन प्रेक्षागृहों के सम्बंध में विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों को देखने से यह पूर्णरूप से निश्चित हो जाता है कि सभ्यता के आरम्भ से ही प्रेक्षास्थल की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। जब-जब मानव ने समूह में बैठकर धर्म और ज्ञान की चर्चा एवं विवेचना की; मनोविनोद के लिए संगीत, नृत्य एवं नाटकों के प्रदर्शन का आयोजन किया; स्वयंवर, मल्लयुद्ध, कंदुक क्रीड़ा, ऐन्द्रिक जाल आदि के विभिन्न कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया, तब-तब इन कार्यक्रमों में भाग लेने वाले पात्रों एवं प्रेक्षकों का प्रत्यक्ष सम्बंध प्रेक्षास्थल से जुड़ गया। इस प्रेक्षास्थल की विनियोजना ऐसी थी, जहां कार्यक्रमों में भाग लेने वाले पात्र जन सामान्य के सम्मुख प्रस्तुत हों और प्रेक्षक उन कार्यक्रमों का आनंद सुख एवं सुविधापूर्वक बैठकर ले सकें। ये स्थल देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप बदलते रहे। कभी ये खुले मैदानों में, कभी गुफाओं या पहाड़ियों में, कभी नगरों के मंदिरों एवं राजप्रासादों में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होते रहे।

प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता कि वैदिक काल में 'समन' आदि के पर्व पर यज्ञवेदी के निकट कुछ कार्यक्रमों का धर्म के प्रचार एवं मनोरंजनार्थ आयोजन किया जाता था। यह यज्ञवेदी के निकट का स्थान ही मुक्ताकाशी 'प्रेक्षास्थल' का एक स्वरूप था। रामायण, महाभारत, पांतजलि महाभाष्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी, बौद्ध एवं जैन धर्म के ग्रंथों में समृद्ध एवं सुनियोजित प्रेक्षागृहों के उल्लख प्राप्त होते हैं। इनमें प्रेक्षागृह को सभा, समाज, रंगवाट, रंगमंडल, प्रेक्षागार आदि के विभिन्न नामों से जाना गया है। महाभारत महाकाव्य में वर्णित प्रेक्षागृह अति विशाल था। इस वृहद प्रेक्षागृह में असंख्य द्वार, सुंदर गवाक्ष, सहस्त्रों स्वर्ण स्तम्भ, वेदिकाएं एवं अनेक मंच थे। इसमें अतिथियों के बैठने के लिए स्वर्ण एवं चांदी से निर्मित आसन और स्त्रियों के लिए पृथक प्रेक्षागृह थे तथा उनमें झीने एवं रेशमी कपड़े पर मणियों, मोतियों से जड़ी, कढ़ी हुई यवनिकाएं टंगी हुई थीं। यह प्रेक्षागार सब भांति समृद्ध एवं सुसज्जित थे। इसमें जलपान कक्ष भी था। कुछ कक्षों में अतिथियों के लिए सोने के पलंग थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारतकालीन ये प्रेक्षागृह आज के स्टेडियम से

सांम्यता रखते थे। वस्तुत: आधुनिक काल के स्टेडियम महाभारतकालीन वृहद प्रेक्षागारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन प्रेक्षागारों में स्वयंवर, नृत्य, संगीत, नाटकों के आयोजन के अतिरिक्त मल्लयुद्ध का प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन भी किया जाता था। अर्थशास्त्र, बौद्ध-जैन ग्रंथों में प्रेक्षास्थल के लिए 'समाज' शब्द का प्रयोग हुआ है। ये समाज सरस्वती मंदिर के निकट होते थे। बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में प्रेक्षागृह , रंगमंडप और रंगमाज के रूप में उल्लिखित हैं। ये प्रेक्षागृह राजभवन से सम्बद्ध थे। इनकी परम्परा वृत्ताकार या वर्गाकार थी। ये भवन आच्छादित थे। बौद्ध-जैन कालीन कुछ प्रेक्षागृह प्रवचन एवं धर्मोपदेश के लिए प्रयुक्त होते थे। ऐसे प्रेक्षागृह प्राय: पहाड़ी गुफा-स्थित थे। भरत नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार के प्रेक्षामंडप कहे गए हैं। ये प्रेक्षामंडप चौकोर, त्रिकोण एवं आयताकार हैं। इन तीनों प्रकार के प्रत्येक प्रेक्षागृह को पुन: ज्येष्ठ, मध्यम एवं अवर (सबसे छोटा) के तीन-तीन आकारों से विभक्त किया गया है। इस प्रकार भरत के नाट्यशास्त्र में आयत प्रेक्षागृह की कल्पना सर्वथा नवीन है। यह कल्पना पारम्परिक प्रेक्षागृहों के आकार से भिन्न है। नाट्यशास्त्र में इसकी निर्माण-शैली किन्हीं वास्तुशास्त्रों के नियमों पर प्रतिपादित है। इस निर्माण-शैली को आज के प्रेक्षागृहों एवं छविगृहों में व्यवहार में लाया जाता है। भरत मुनि ने प्रेक्षागृह के निर्माण के लिए विशेष निर्देश दिए हैं। उन्होंने कहा है कि प्रेक्षागृह न अधिक बड़ा, न ही अधिक छोटा होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने मध्यम आकार के प्रेक्षागृह को सर्वश्रेष्ठ कहा है। 64 × 32 हाथ यानी 96 × 48 फुट के परिमाण वाले मध्यम प्रेक्षागृह में रंगपीठ की ध्वनि एवं दृश्य प्रेक्षकों के लिए सुसाध्य होते हैं। प्रेक्षागृह शैलगुहाकार हो, प्रेक्षकों की आसन-व्यवस्था सोपानाकार हो, भवन में खिड़कियों एवं द्वारों की संख्या कम हो आदि प्रेक्षाभवन के निर्माण-सम्बंधी नियमों का विवेचन भरत नाट्य शास्त्र में किया गया है। इन प्रेक्षागृहों के वास्तुशिल्प सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि भरत के पूर्व या उनके समय में ऐसे विकसित एवं समृद्ध प्रेक्षागृह प्रचलित थे। ये प्रेक्षागृह मदिरों एवं राजभवन के अंग थे। नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य नाट्यशास्त्र ग्रंथों में भी प्रेक्षागृह-सम्बंधी नियमों का प्रतिपादन हुआ है। शारदातनय के भावप्रकाश में वृत्त प्रकार के प्रेक्षागृह का उल्लेख है, जो राजप्रासाद से सम्बद्ध हैं। यह प्रेक्षागृह आसन एवं मंच से युक्त हैं। इस प्रकार देखा गया है कि प्राचीनकाल में चार प्रकार के प्रेक्षागृह प्रचलित थे। ये प्रेक्षागृह वर्गाकार, आयताकार, त्रिकोणाकार तथा वृत्ताकार थे। प्रेक्षागृह के विभिन्न संदर्भों को कला, वास्तु एवं शिल्प ग्रंथों में देखने से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में प्रेक्षागृहों का

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं कला के क्षेत्र में अति महत्व था। इसके भवन को किन्हीं वास्तुशिल्प के सिद्धांतों पर निर्मित किया जाता था। प्राचीन कालीन वास्तुशिल्प शास्त्रों में प्रेक्षागृह-निर्माण के अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

यह ज्ञातव्य है कि प्रायः सभी नाटककार अपने नाटकों की रचना अभिनय के लिए करते हैं। एतदर्थ उनकी परिकल्पना में प्रेक्षागृहों का कोई-न-कोई स्वरूप अवश्य रहता है। अतएव प्राचीन नाट्यकृतियों में तत्कालीन प्रेक्षागृहों की परम्पराओं को देखा गया है। इस परिप्रेक्ष्य में अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति आदि की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन प्रेक्षागृह आच्छादित एवं मुक्ताकाशी-दोनों प्रकार के थे। आच्छादित प्रेक्षागृह राजभवन एवं मंदिरों से सम्बद्ध होते थे जिन्हें संगीतशाला एवं नृत्यशाला या नाट्यमंडप के नाम से जाना जाता था। प्रेक्षागृहों के ये स्वरूप अत्यंत विकसित एवं समृद्ध थे। उनमें रंगमंच-स्थल, प्रेक्षकों में राजा, उनके राजकर्मचारी एवं अतिथियों के लिए निर्धारित स्थल होते थे। रंगपीठ एवं नेपथ्य-स्थल दो धरातल वाला था। रंगपीठ पर भरत-निर्दिष्ट मतवारणियों की व्यवस्था थी। इनका धरातल रंगपीठ से कुछ ऊंचा होता था। कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतलम में हंसपादिका के गाने का स्वर द्विमंजिले नेपथ्य-स्थल की ओर संकेत करता है। इन नाट्यकृतियों में स्थान-स्थान पर अवतीर्य, आरूह्य, अधोविलोक्य आदि शब्द विभिन्न धरातलीय मंच की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन नाट्यकृतियों में प्रतिबिम्बित प्रेक्षागृह मध्यमाकार एवं ज्येष्ठ आकार के थे। इनमें यवनिका का प्रयोग होता था। महाकवि भास की कुछ प्रारम्भिक कृतियों में कुछ अतिविशाल प्रेक्षागृहों के उल्लेख मिलते हैं। इन प्रेक्षागृहों में जंगली जानवरों को प्रस्तुत किया गया है तथा युद्ध का दृश्य इन प्रेक्षागृहों में दर्शाया गया है। प्राचीन नाट्य प्रयोग में गर्भनाटक को दिखाने की परम्परा मिलती है। भवभूति के उत्तर रामचरित को पढ़कर ज्ञात होता है कि यह गर्भनाटक नेपथ्य स्थल पर ही अभिनीत किया गया है। यहां भाव यह है कि रंगपीठ स्थल पर तो नाट्य प्रयोग होता ही है लेकिन नेपथ्य-स्थल को भी अलौकिक दृश्यों या रंगपीठ पर दर्शाए जा रहे दृश्यों से बिलकुल भिन्न दृश्यों को दिखाने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। यह नेपथ्य स्थल द्विमंजिला होता था। ऐसी परम्परा प्राचीन ग्रीक एवं रोम के रंगमंच पर भी देखने को मिलती हैं। आज कल ऐसे दृश्यों को रंगमंच के धरातल पर ही (पार्श्वदीप्ति द्वारा) दर्शाया जाता है।

प्राचीन साहित्य में प्रेक्षागृहों के संदर्भ में प्रस्तुत करने के पश्चात् उत्खनन में प्राप्त कुछ प्राचीन प्रक्षागृहों के ध्वंसावशेषों को देखकर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में ऋषि, मनीषी अपनी धार्मिक साधना के लिए तथा कला में रुचि रखने वाले कलासाधक निर्जन स्थान पर बनी पहाड़ी गुफाओं को प्रेक्षागृह के रूप में प्रयोग किया करते थे। मध्यप्रदेश में सीताबेंगा गुफा, उड़ीसा की रानी गुफा, नागार्जुन कोंडा की पहाड़ियों में एम्फी थियेटर एवं रंगमंडप आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रेक्षामंडप हैं, जो सुनियोजित रूप से निर्मित नहीं किए गए हैं, किन्तु उनमें प्रेक्षागृह के वे सभी गुण प्राकृतिक रूप से विद्यमान हैं, जो एक विनियोजित प्रेक्षागृह में होने चाहिए। इसके अतिरिक्त सिन्धु सभ्यता का एक विशाल कक्ष, जो मोहनजोदड़ों के स्थान पर पुरातत्व उत्खनन द्वारा प्राप्त हुआ, प्रेक्षागृह की विशेषताओं से युक्त है। इसमें अनेक स्तम्भ हैं। छत ढालुवां है, प्रेक्षकों के आसन हैं, नर्तकियों की मिट्टी की मूर्तियां है। मिट्टी पर बने कुछ वाद्ययंत्रों के ध्वंसावशेष हैं। ये सभी बातें यह संकेत देती हैं कि आज से 3500 वर्ष पूर्व प्रेक्षागृह का अस्तित्व था। इसके अतिरिक्त पटना के कुम्भरहार ग्राम में भी एक मौर्य कालीन सभा मंडप के स्थापत्यावशेष प्राप्त हुए हैं। सभाभवन के इन स्थापत्यावशेषों में तथा महाभारत वर्णित सभाभवन के उल्लेखों में साम्यता मिलती है। इसी कारण कुछ इतिहासकारों का मत है कि ईसा से 600 वर्ष पूर्व इतना विशाल और समृद्ध प्रेक्षागृहों का प्रचलन था। ये प्रेक्षागृह प्रायः राजभवन से सम्बद्ध थे। इनके अतिरिक्त अजंता, एलोरा, काठियावाड़ तलज, एभल आदि के पहाड़ी गुफाओं में प्रेक्षागृह सामान्य कक्ष के रूप में, प्राप्त होते हैं। इनमें विशाल कक्षों के मध्य में बेदी बनी हुई है। बेदी के चारों ओर धर्म-प्रवर्तक या भक्तगण बैठते थे। कभी-कभी यहीं पर नाटक, नृत्य, संगीत या कीर्तन के कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते थे। इन कक्षों में स्तम्भ एवं प्रेक्षकों के लिए पत्थर की चौकियां रखी हुई हैं।

प्राचीन प्रेक्षागृहों के ऐतिहासिक स्रोतों में दक्षिण भारत के बने कुछ प्राचीन मंदिर से सम्बद्ध प्रेक्षामंडपों का आज भी महत्व है। केरल के मंदिरों में बने 'कूथाम्बलम्' एवं 'बलियाम्बलन्' नाट्यमंडप प्राचीन प्रेक्षागृहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। असम के नामघर भी पारम्परिक शैली से निर्मित प्राचीन प्रेक्षागृहों की श्रेणी में आते हैं। ये नामघर बांस से बनाए जाते हैं। इनकी छत 'U' के आकार की होती है। दक्षिण के कुछ मंदिरों से सम्बद्ध कूथाम्बलम् भरत के प्रेक्षागृह-निर्माण सिद्धांतों पर आधारित जान पड़ता है। यह आयताकार है। इसमें रंगमंच

स्थल के स्तम्भों के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग हुआ है। इन्हें विविध प्रकार के शिल्प से सजाया गया है। कूथाम्बलम् के नेपथ्य-स्थल पर दो द्वार हैं। भरत नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट मतवारणी की व्याख्या कूथाम्बलम् के प्राचीन प्रेक्षागृहों में दिखाई पड़ती है। कूथाम्बलम् रंगमंडप में प्रेक्षक-स्थल सामान्य रूप से निर्मित है। इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिरों से सम्बद्ध रंग विलास, रंग-मंडप आदि ऐसे प्रेक्षागृह हैं, जिनमें आज भी देवदासियों या अन्य कलाकारों द्वारा धार्मिक कथाओं को नृत्य अथवा दक्षिण नाट्यशैली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अनेक स्तम्भ हैं। छत ऊंची है। दीवारों एवं स्तम्भों पर अनेक देवी-देवताओं नर्तकियों एवं अप्सराओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। प्राचीन प्रेक्षागृहों के इन स्वरूपों को देखकर प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत प्रेक्षागृहों के स्थापत्य वास्तुशिल्प-कला के क्षेत्र में समृद्ध था।

प्राचीन प्रेक्षागृहों का निर्माण किन्हीं वास्तुशिल्पकला के सिद्धांतों पर किया जाता था। सर्वप्रथम किसी भी भवन के निर्माण से पूर्व भूमि यानी कि मिट्टी की परीक्षा की जाती है। तदनंतर उस भूमि पर भवन को निर्मित किया जाता है। प्राचीनकाल के वास्तुशास्त्रों में मिट्टी परीक्षण के अनेक नियम प्राप्त होते हैं, जो आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृहों के निर्माण के लिए ऐसी भूमि का प्रतिपादन किया है जो समतल, स्थिर, कठोर और काले या पीले रंग की हो। ऐसी भूमि पानी का शोषण अधिक नहीं करती। फलतः भवन के नींव के बैठने की आशंका नहीं होती। मिट्टी का परीक्षण करके उस पर हल चलाया जाता था और उस पर से झाड़ी, कांटे, हड्डी, पत्थर आदि कूड़ा-कचरा हटा दिया जाता था। इस कार्य के उपरांत प्रेक्षागृह की पूर्व योजना (आलेख) तैयार की जाती थी। इसके लिए सूत्र के धागे से भूमि पर प्रेक्षा-गृह के भवन के लिए चिह्न लगाए जाते थे। तदनंतर प्रेक्षागृह के लम्बाई वाले परिमाण में से आधे भाग को प्रेक्षक-स्थल के लिए रखा जाता था। नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट प्रेक्षक-स्थल का यह नियम अन्य सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों के लिए सामान्यतः व्यवहृत था। ये प्रेक्षागृह आयत, चौकार, त्रिकोण एवं वृत्त थे। इनके परिमाण, प्रकार तथा आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न थे। भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार आयत प्रकार के प्रेक्षागृह का नाप तीन आकारों में था, सबसे बड़ा 108, मध्यम का 64 तथा सबसे छोटे का 32 हाथ वाला नाप था। चौकोर और त्रिकोण प्रक्षागृहों की लम्बाई, चौड़ाई भी उक्त परिमाणों में की जाती थी। वृत्त प्रकार

के प्रेक्षागृह का कोई निर्धारित परिमाण नहीं मिलता है। प्रेक्षागृह की निर्धारित भूमि को दो भागों में विभक्त करके इसमें प्रेक्षक-स्थल एवं रंगमंच-स्थल की विनियोजना होती थी। प्रेक्षक-स्थल में प्रेक्षकों को रंगमंच के सभी कार्यक्रम बिना किसी बाधा के स्पष्ट दिखाई दें, आगे की पंक्तियों में बैठे प्रेक्षकों के सिर व्यवधान न बनें, इसके लिए सोपानाकृति आसन व्यवस्था होती थी। इन आसनों की ऊंचाई आधे हाथ यानी कि नौ इंच होती थी तथा चौड़ाई डेढ़ हाथ की होती थी। इन आसनों को ईंटों और लकड़ी से बनाया जाता था। इनके ऊपर प्रेक्षक गद्दे डालकर बैठते थे। प्रेक्षक-स्थल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के आसन-स्थल पृथक-पृथक होते थे। प्रत्येक वर्ण के लिए श्वेत, रक्त एवं पीतरंग से सुसज्जित स्तम्भों को वर्ग-विशेष के लिए निर्धारित स्थान पर स्थापित किया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रेक्षागृह में सिद्धि लेखकों एवं प्राश्निकों के भी स्थान निश्चित होते थे। इन्हें आगे की पंक्ति में बैठाने की व्यवस्था की जाती थी।

प्राचीन प्रेक्षागृहों में अनेक स्तम्भों को स्थापित करने की परम्परा थी। ये स्तम्भ विविध शिल्पविधियों से अलंकृत एवं सुसज्जित होते थे। इनमें से कुछ स्तम्भ प्रेक्षागृह की छत को सहारा देने के लिए होते थे, जो बड़ी शिलाओं से काटकर बनाए जाते थे। इन्हें प्रेक्षागृह के चारों कोने पर तथा मध्य में स्थापित किया जाता था। कुछ स्तम्भ रंगमंच-स्थल पर केवल सुसज्जा के लिए लगाए जाते थे। ये स्तम्भ अन्य स्तम्भों की अपेक्षा छोटे होते थे। प्रेक्षक-स्थल की छत को टिकाए रखने के लिए स्तम्भों पर धरन को रखा जाता था। यह धरन विभिन्न मूर्ति-चित्रों से सुसज्जित होती थी। प्रेक्षक-स्थल की छत को शैलगुहाकार बनाया जाता था। रंगमंच-स्थल की छत अपेक्षाकृत नीची होती थी। प्रेक्षागृह में कम संख्या में द्वारों, खिड़कियों का निर्माण किया जाता था। रंगमंच-स्थल प्रेक्षक-स्थल से लगभग तीन फुट ऊंचा होता था। प्राचीन प्रेक्षागृहों के रंगमंच-स्थल को तीन भागों में बनाया जाता था। ये भाग रंगपीठ, रंगशीर्ष तथा नेपथ्य थे। विभिन्न धरातलों के अनुसार इन्हें एक-दूसरे से कुछ ऊंचा रखा जाता था। रंगमंच-स्थल के आगे के भाग पर मतवारिणी की व्यवस्था की जाती थी। मतवारिणी को लकड़ी के चार स्तम्भों से बनाया जाता था। इन पर एक-दूसरे के सामने खड़े मतवाले हाथियों की ऊपर उठी हुई सूंडों को आकार दिया जाता था। कालांतर में यह आकार धनुषाकार या 'आर्क' के रूप में परिवर्तित हो गया है। हाथियों को शुभ माना गया है, अतः मतवारिणी में स्तम्भों के ऊपर इन हाथियों के मस्तक एवं सूंड़ को स्थान दिया गया है। इसलिए रंगपीठ पर बनी मतवारिणी का नाम इसी आधार

पर पड़ा। यह मतवारिणी रंगपीठ पर वरण्डा का प्रतिनिधित्व करती है। प्रेक्षागृह निर्माण में 'पडदारूक' वास्तुशिल्प-विधि का उल्लेख किया गया है। इस पडदारूक का प्रयोग रंगपीठ और रंगशीर्ष अर्थात रंगमंच के अग्रभाग पर होता था। इसको छह लकड़ियों के विशेष ढांचे से तैयार किया जाता था। प्रेक्षागृह के मुख्य अवयवों के निर्माण के पश्चात् बाहर की दीवारों पर भित्तिलेप तथा सुधालेप (चूना) होता था। प्रेक्षागृह की अंदर की दीवारों को परिष्कृत कर उन पर चित्रकारी की जाती थी।

प्राचीन प्रेक्षागृहों के वास्तुशिल्प विषय के अंदर प्रेक्षागृहों की निर्माण-सामग्री और उसकी साज-सज्जा का सम्यक विवेचन किया गया है। प्राचीन प्रेक्षागृहों के निर्माण के लिए ईंट, पाषाण का प्रयोग होता था। लेकिन गुफा-स्थित रंगमंडप रानी-गुफा एवं सीताबेंगा हैं। इनमें ईंटों का प्रयोग बिलकुल नहीं किया गया है। नागार्जुन.कोंडा में प्राप्त एम्फीथियेटर ईंटों से ही बना है। भरत ने नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह-निर्माण में ईंटों का प्रयोग दर्शाया गया है। ईंटों एवं पत्थरों को आपस में चिपकाने के लिए 'वज्रलेप' का प्रयोग होता था। यह एक प्रकार का सीमेंट होता था, जो कई प्राकृतिक पदार्थों जैसे कंदुरू, बेल, गोंद, उड़द की दाल, गुड़, चमड़ा आदि को मिलाकर तैयार किया जाता था। इसके अतिरिक्त लकड़ी का प्रयोग द्वारों, खिड़कियों, आसनों, रंगपीठ के स्तम्भों आदि के लिए बहुलता से किया जाता था। भरत-नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट प्रेक्षागृहों के निर्माण-सिद्धांत के अंतर्गत स्तम्भों के मूल में सोने, चांदी, लोहा, तांबा जैसी धातुओं को डालने का निर्देश मिलता है। स्तम्भों के मूल में इतनी मूल्यवान धातुओं के लगाने में वैज्ञानिक तथ्य क्या है। यह प्रमाणित नहीं हो सका है। किंतु ऐसा हो सकता है कि ये धातुएं बादलों की बिजली, भूस्खलन या भूकम्पन से भवन को किसी प्रकार अपने धात्विक गुणों के द्वारा सुरक्षित करती होंगी। प्राचीन प्रेक्षागृहों में ध्वनि एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था थी। ध्वनि-विस्तरण के लिए प्रेक्षागृह के भवन का निर्माण इस योजना से किया जाता था कि रंगमंच से उच्चारित पाठ या स्वर प्रेक्षकों को स्पष्ट सुनाई दे सके। इसके लिए प्रेक्षागृह को अंग्रेजी के उल्टे यू (U) के समान बनाया जाता था। इस प्रकार की छत का वास्तु-तकनीकी नाम 'शैलगुहाकार' था। रंग-मंच-स्थल की छत नीची होती थी। दीवारों पर कच्चा प्लास्तर किया जाता था, ताकि स्वर टकराकर विस्वर या कानों को चुभने वाला न बने। खिड़कियों, द्वारों की संख्या कम रखते थे, जिससे हवा के वेग से अंदर की ध्वनि तरंगें बाहर न

बिखरें। इसके अतिरिक्त भोंपू जैसे ध्वनि विस्तारक यंत्र का प्रयोग भी यदाकदा होता था। वस्तुत: प्रेक्षागृह की अंदर की आकृति भोंपू जैसी होती थी, जिसमें रंग-मंच-स्थल संकीर्ण स्थान पर तथा प्रेक्षक-स्थल विस्तृत स्थान पर होता था। प्राचीन-प्रेक्षागृहों में बड़े-बड़े दीपकों का प्रयोग प्रकाश के लिए किया जाता था। ये बड़े-बड़े दीपक स्तम्भों के ऊपर धरन पर रखे जाते थे या तराजू के पलड़ों की तरह से बनाए गए 'स्टेंड' पर रखते थे, जिनमें असंख्य बत्तियां या छोटे-छोटे दीपक झिल-मिल करते हुए प्रकाश देते थे। ऐसे दीपकों का प्रयोग दक्षिण भारत के रंगमंडपों एवं 'कूथाम्बलम्' रंगमंडप में आज भी पारम्परिक-शैली में विशेष उत्सवों पर किया जाता है।

प्रेक्षागृहों के निर्माण के पश्चात् उसे विभिन्न शैलियों में अलंकृत करने का कार्य भी विशेष ढंग से होता था। इसके लिए यह बात ध्यान में रखी जाती थी कि भवन किन-किन कार्यक्रमों के लिए प्रयोग में आता है। यदि प्रेक्षागृह केवल धर्म, दर्शन के प्रवचन हेतु प्रयुक्त होता है तो उसमें चित्र या मूर्तिकला के विषयों को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। भवन के अंदर की दीवारों पर किन्हीं महान मनीषियों के चित्र उपदेश देने के संदर्भ में या तप की साधना में लीन मुद्राओं को ही उत्कीर्ण या चित्रित किया जाता था। किंतु यदि प्रेक्षागृह नृत्य, संगीत या नाट्य जैसी ललितकलाओं के लिए प्रयुक्त होता था, तो उसमें स्त्री-पुरुष के युगल चित्रों, पशु-पक्षी के कलरव करते, विषयों को बड़ी निपुणता एवं कौशल से प्रेक्षा-गृह की अंदर-बाहर की दीवारों पर चित्रित किया जाता था। प्रेक्षागृह के लकड़ी और पाषाण के स्तम्भों पर देवदासियां, नृत्य करती अप्सराओं तथा वाद्य-यंत्र बजाते वादकों के चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे। प्राचीन प्रेक्षागृहों के स्तम्भों के 'नागदंत' (खूंटी) पर 'शालमंजिका' को टांगने का भी उल्लेख मिलता है। ये लकड़ी से बनाई जाती थी। इस प्रकार प्रेक्षागृह का निर्माण एवं उसका समुचित अलंकरण सुविनियोजित और व्यवस्थित था।

प्राचीन प्रेक्षागृहों के निर्माण के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इस भवन-वास्तु विशेष को एक 'यज्ञ' के समान एक महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता रहा है। अतएव इसके निर्माण के अवसरों पर विभिन्न स्थलों पर विधिवत् पूजा करने के निर्देश नाट्यशास्त्र एवं प्राचीन वास्तुशास्त्रों से मिलते हैं। इनमें प्रेक्षागृह की भूमि-पूजा, स्तम्भ-स्थापन पूजा, मतवारणी पूजा एवं रंगपीठ पूजा का विशेष महत्व कहा गया है। भरत ने पूजा के इस अवसरों पर अनेक उत्तम, मध्यम तथा

अद्यम श्रेणी के देवी-देवताओं की अर्चना का निर्देश दिया है। विभिन्न रंगों के पुष्प, गंध आदि के अतिरिक्त घृत, पायस, मधुपर्क, कृसरा, मोदक आदि खाद्य-पदार्थ भी पूजा सामग्री में सम्मिलित थे। प्रेक्षागृह के एक स्वरूप 'नाट्यमंडप' के पूजावसरों पर पणव, शंख आदि का उद्घोष करने का उल्लेख नाट्यशास्त्र में मिलता है। इसके साथ ही यह संकेत भी मिलता है कि इन शुभावसरों पर सन्यासियों को हटा देना चाहिए। संन्यासियों को नाट्यमंडप के निर्माण के समय हटा देने का कारण यह है कि वह सांसारिकता अथवा विषय भोगों से दूर रहता है, जबकि 'नाट्यमंडप' का विषय सांसारिकता से सम्बद्ध है। पूजा के संदर्भ में 'रंग देवता' की पूजा की जाती है। ऐसा मत है कि यह रंग देवता 'वास्तु देवता' हैं, जिसकी पूजा करने से बाधाएं एवं विघ्न दूर हो जाते हैं।

प्रेक्षागृह ललितकलाओं के प्रदर्शन का केन्द्र या स्थल है। ललितकलाओं का जन्म और विकास जनमानस की समृद्धि, हर्ष और उल्लास से जुड़ा है। ऐसे शुभा-वसरों पर कोई अनिष्ट या हानि न हो, अतः भवन स्थापत्य जगत में पूजा अनि-वार्य की गई है। पूजा का दूसरा व्यवहारिक लाभ यह भी है कि ऐसे अवसरों पर मानव संकल्पी, संयमी, पवित्र एवं अनुशासनबद्ध होकर अपने कर्त्तव्य में ध्यान-निष्ठ हो, अतएव पूजा से मानव में मनोबल बढ़ता है और कठिन कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। सम्भवतः इसी कारण विज्ञान के वर्तमान युग में भी भवन-निर्माण के अनेक अवसरों पर शास्त्रोक्त विधियों से पूजा की जाती है। आज भी भवनवास्तु पूजा प्राचीन परम्परा को अनुप्राणित करती है।

भारत में प्राचीन प्रेक्षागृहों के अस्तित्व एवं उनके पारम्परिक स्वरूपों को जानने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रत्येक युग में प्रेक्षागृहों का अपना वैशिष्ट्य रहा है। प्राचीन प्रेक्षागृहों का धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों के अनुसार अपना एक भिन्न रूप था, उनकी शिल्प एवं वास्तुशैलियां अपने काल की परम्पराओं से प्रभावित थीं। आधुनिक युग में योरोपियन प्रभाव से इन प्रेक्षागृहों के दो मुख्य रूप हमारे समक्ष हैं। उनमें में सजीव दृश्यों के लिए स्टेडियम, मल्लशाला, रासलीला-मंडप, रंगमंडप आदि हैं तथा दूसरा निर्जीव क्षेत्रों के प्रस्तुतीकरण के लिए छविगृह या सिनेमाघर है। सजीव दृश्यों के प्रस्तुतीकरण के लिए प्रयुक्त प्रेक्षागृह में प्रेक्षक-स्थल एवं रंगमंच-स्थल के निर्माण एवं विनियोजना को समान महत्व दिया जाता है, परंतु निर्जीव चित्रों के प्रदर्शन के लिए छविगृहों में मुख्यतः प्रेक्षक-स्थल को ही अधिक महत्व दिया जाता है। चित्रों को दिखाने वाले

पर्दे की विशेष ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई एवं उसकी बनावट पर ध्यान दिया जाता है। आज के इन प्रेक्षागृहों के सर्वेक्षण एवं उनके निर्माण विशेषज्ञ वास्तुविदों की सम्मतियों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भवन के अंदर बनाए जाने वाले आच्छादित प्रेक्षागृहों के निर्माण में आज भी प्राचीन प्रेक्षागृह के मूल सिद्धांतों को व्यवहार में लाया जाता है। इन प्रेक्षागृहों की लम्बाई, चौड़ाई, छत का विषम स्तर होना, द्वार और खिड़कियों का कम होना, प्रेक्षकों की आसन पंक्तियों का रंगमंच के सामने ढालू तथा पीछे की ओर क्रमशः ऊंचा होते जाना आदि-आदि बातों में प्राचीनकालीन नियमों का अनुसरण किया जाता है। यह बात और है कि विज्ञान के नवीनतम तकनीकियों से आज के आच्छादित प्रेक्षागृह अधिक सुव्यवस्थित एवं विकसित हैं।



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मत्रालय
भारत सरकार